प्रकाशक—

श्रीकृष्णचन्द्र बेरी

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पो० बक्स न० ७०

ज्ञानवापी, बनारस ।

मुद्रक—

विद्यामन्दिर प्रेस लि०,

मानमन्दिर, बनारस ।

लोही लुहाय चली कृपाण,
चमकीला छाटा लाल-लाल ।
मद मत्त वीर धर उग्र रूप,
डाटी तरवारा अड़ा ढाल ।
असवार पड़या खा-खा पछाड़,
ली भेंट भवानी रुण्डमाल ।

—मेघराज 'मुकुल' (वर्तमान)

विषय-सूची

प्रस्तावना

यह पुस्तक आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व तैयार हो चुकी थी, किन्तु कई कठिनाइयों से इसका प्रकाशन तत्काल नहीं किया जा सका। पुस्तक-प्रकाशन में विलम्ब होते देख मैंने इसके आधार पर ३० निबन्ध तैयार किये और उनको राजस्थान से सम्बन्धित प्रमुख पत्रों में प्रकाशित किया। राजस्थानी भाषा के प्रश्न को प्रायः सभी साथियो और सम्बन्धित व्यक्तियो ने बहुत महत्त्व दिया और आग्रह किया कि इस पुस्तक को अवश्य ही प्रकाशित किया जावे। इसलिये इस पुस्तक को संक्षिप्त कर नवीन रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

भारतीय स्वाधीनता और अधिकांश राजस्थान के एकीकरण पर भी राजस्थानी विद्यार्थियों को मातृभाषा राजस्थानी द्वारा शिक्षण नहीं दिया जाता है। इसलिये हमारे विद्यार्थियों को सर्वथा अवैज्ञानिक और अनुपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों से परेशान होना पड़ता है। अधिकांश विद्यार्थी घबरा कर प्रारंभिक कक्षाओं में ही पढ़ना छोड देते हैं। मातृभाषा में शिक्षण मिलने से और मातृभाषा में उपयुक्त साहित्य प्राप्त होने से लिखना-पढ़ना सीखते ही विद्यार्थियों के लिये ज्ञान-विज्ञान के द्वार खुल जाते हैं। राजस्थानी भाषा की अमान्यता से ही राजस्थान में वर्षों के परिश्रम और करोड़ों रुपये के व्यय पर भी निरक्षरता के आंकड़े ९१.५ प्रतिशत से कम नहीं हो रहे हैं।

राज्य-कार्य में भी अब राजस्थानी कहीं देखने में नहीं आती और इस कारण हमारी जनता सर्वथा असहाय हो गई है। पग-पग पर उसे असीम कठिनाई का सामना करना पड़ता है और मातृभाषा की अमान्यता से मूलभूत नागरिक अधिकारों तक से वंचित रहना पडता है। यह स्थिति कब तक सह्य हो सकती है?

राजस्थानी साहित्य से मैं बाल्यावस्था में ही प्रभावित हो चुका था। मुख्यत महाराज चतुरसिंहजी की सरल, सरस राजस्थानी पुस्तकें मैंने बडे चाव से पढी थीं। साथ ही प्राचीन वीर रसपूर्ण और शोक साहित्य का रसास्वादन भी मैं कर चुका था। तदुपरान्त राजस्थान विश्व विद्यापीठ, शोध-सस्थान, उदयपुर के सस्थापक, मन्त्री और सचालक के नाते राजस्थान में साहित्यिक-सास्कृतिक खोज, सग्रह तथा सम्पादन-प्रकाशन सम्बन्धी कार्य प्रारभ किया तो कुछ ही वर्षों में हिन्दी और सस्कृत के साथ राजस्थानी भाषा की भी पर्याप्त सामग्री एकत्रित हो गई। उसके अध्ययन से मेरी मातृभाषा सम्बन्धी गौरव-भावना जाग्रत हुई। अब राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर के साहित्यिक कार्यों में सलग्न रहने से इस सबध में प्रेरणा प्राप्त होती है। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो किसी भी आधुनिक भारतीय आर्यभाषा का प्राचीन साहित्य राजस्थानी साहित्य की समानता नहीं कर सकता। नवीन राजस्थानी साहित्य भी परम उत्कृष्ट है, किन्तु अग्रेजी शासन-काल के प्रकाशन सम्बन्धी प्रतिबन्धो के कारण उसका समुचित विकास नहीं हो सका है।

भारतीय स्वाधीनता के उपरान्त भारतीय सविधान बनने लगा तो मैंने सविधान सभा के कुछ सदस्यो के सामने राजस्थानी भाषा की मान्यता सम्बन्धी प्रस्ताव रक्खा, किन्तु इस विषय में उनकी उदासीनता देखकर अत्यन्त दु ख हुआ। फिर भारतीय सविधान में दो करोड भारतीय जनता की मातृभाषा राजस्थानी को सर्वथा उपेक्षित कर दिया गया। ससार की किसी अन्य प्रगतिशील जनता के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता तो एक बडी क्रान्ति हो जाती। मातृभाषा के प्रति सम्बन्धित जनता में चेतना का अभाव, नेताओं की उदासीनता और सम्बन्धित भ्रान्तियो को देखते हुए हमें तत्काल प्रयत्नशील होना पडा। अब लिखते हुए प्रसन्नता है कि राजस्थान के प्रमुख स्थानो में और बाहर भी 'राजस्थानी' सम्बन्धी मगल-कार्यों का सूत्रपात हो चुका है। इनका शुभ परिणाम शीघ्र ही सामने आवेगा।

राजस्थानी का जन-आन्दोलन कई वर्षों से चालू है। राजस्थान के प्रमुख साहित्यकारों, विद्वानों, जन-नेताओं और कार्यकर्त्ताओं का इसमें पूर्ण सहयोग रहा है[1]। किन्तु कई भ्रान्तियों के कारण इसमें अबतक सफलता नहीं मिल सकी है। मैंने प्राचीन राजस्थानी, नागरी लिपि, खड़ी बोली आदि से सम्बन्धित भ्रान्तियों के निराकरण का प्रयत्न किया है। साथ ही आर्य-भाषा-परिवार, वेदों का निर्माण आदि के सम्बन्ध में नवीन ज्ञातव्य भी उपस्थित किये हैं। अवश्य ही इस पुस्तक में प्रसङ्गवश अत्यन्त सक्षेप में लिखा गया है। पाठकों की सेवा में विस्तृत विवरण किसी अन्य ग्रन्थ में प्रकाशित किया जायेगा। किन्तु जितना इस विषय में लिखा गया है, आशा है कि भ्रान्तियों के निराकरण के लिये और बार बार मातृभाषा राजस्थानी को दुतकारनेवालोंकी समझ के लिये पर्याप्त होगा।

राजस्थान और मालवा राजनैतिक दृष्टि से अलग कर दिये गये हैं। महान् मालवा का अस्तित्व ग्वालियर में लीन करने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु दोनो प्रदेशों की जनता सास्कृतिक दृष्टि से अभिन्न बनी हुई है। अंग्रेजी शासन के समय में दोनों के काग्रेस और शिक्षा आदि से सम्बन्धित सगठन भी अभिन्न थे। अब चम्बल-सिंचाई और बिजली-योजना द्वारा राजस्थान-मालवा की एकता पुनः स्थापित होनेवाली है। साथ ही यह देख कर परम सन्तोष होता है कि मालवा के साहित्यकारों में भी अपनी मातृभाषा के प्रति नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हो चुका है। सर्वश्री सूर्यनारायण व्यास, श्याम परमार, श्रीनिवास जोशी, आनन्दराव जोशी और अन्य साहित्यकारो ने निश्चित योजना के साथ मातृभाषा-विकास सम्बन्धी कार्य प्रारम्भ कर दिये हैं। राजस्थान-मालवा के विद्वानों और साहित्यकारो को जनहित की दृष्टि से राजनैतिक अनेकता की चिन्ता किये बिना अधिक सहयोग से कार्य करनें की परम आवश्यकता है।

मातृभाषा और मातृभूमि की सेवा करना राष्ट्रभाषा और राष्ट्र

१—राजस्थानी भाषा-सम्बन्धी [illegible]

के विकास के लिये परम आवश्यक है। मुझे विश्वास है कि मातृभाषा राजस्थानी का विकास राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में सहायक है। इसलिये राजस्थानी के सर्वांगीण विकास सम्बन्धी प्रयत्न सर्वथा प्रशंसनीय और प्रोत्साहनीय है।

अन्त में मैं अपने समस्त सहयोगियों और श्रद्धेयो का आभार मानता हूँ, जिन्होंने मुझे सदा ही प्रोत्साहन दिया है। साथ ही पुस्तक प्रकाशन में सहयोग देने और उसकी उत्तम छपाई-सफाई के लिये मैं श्रीयुत कृष्णचन्द्र जी बेरी और उनके सहयोगियो को अपने हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

जयपुर, —पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

ता० १ मई, १९५३ ई०

राजस्थानी भाषा की रूपरेखा और मान्यता का प्रश्न

पहला अध्याय

राजस्थानी भाषा का प्रारंभिक परिचय

हमारे भारतवर्ष जैसे सुविस्तृत देश में भूमि, भाषा और संस्कृति की दृष्टि से विभिन्नताओं का होना स्वाभाविक है। भारतवर्ष का अस्तित्व भी वास्तव में विभिन्न भारतीय भू-भागों, भाषाओं और संस्कृतियों की सम्मिलित शक्ति तथा मूल एकता पर निर्भर है। अखिल भारतीय उत्कर्ष के लिये यह परम आवश्यक है कि विभिन्न भारतीय भू-भागों, भाषाओं और संस्कृतियों का संरक्षण तथा समुचित रूप में इनका विकास किया जावे।

अधिकांश पश्चिमी भारतवर्ष के विस्तृत भाग में फैला हुआ राजस्थान भी भूमि, भाषा और संस्कृति की दृष्टि से अन्य भारतीय प्रमुख प्रान्तों की तरह अपनी मौलिक विशेषताओं से युक्त है। राजस्थान की मौलिक विशेषताएँ कला, इतिहास और साहित्य के क्षेत्र में स्पष्ट तथा सुप्रतिष्ठित हो चुकी हैं। राजस्थानी कला, इतिहास और साहित्य के साथ राजस्थानी भाषा की ओर भी देश-विदेश के विद्वानों का ध्यान गया है, किन्तु बहुत ही कम। राजस्थानी भाषा अपने विस्तार-क्षेत्र, जन-संख्या और सुविस्तृत एवं उत्कृष्ट साहित्य के कारण प्रमुख भारतीय भाषाओं में उच्च स्थान प्राप्त करने योग्य है। किन्तु राजस्थानी भाषा का समुचित दृष्टि से अध्ययन और प्रकाशन बहुत कम हुआ है। इसलिये राजस्थानी भाषा के सम्बन्ध में लोगों की जानकारी नहीं के समान है। साथ ही इस विषय में विविध भ्रान्तियां भी प्रचलित हो गई हैं।

राजस्थानी जनता की उन्नति और हमारे देश के नव-निर्माण में राजस्थान का संपूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिये राजस्थानी भाषा के समुचित

अध्ययन की तथा सम्बन्धित विषयो पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने की अनिवार्य आवश्यकता है ।

(क) विस्तार-क्षेत्र

राजस्थानी समस्त राजस्थान की प्रान्तीय और मातृभाषा है । पश्चिमी भारतवर्ष के उत्तर में सरस्वती या हाकडा नदी के सूखे धाले से दक्षिण में सतपुडा पर्वत के ढालो एव ताप्ती नदी तक और पूर्व मे बेतवा नदी की ऊपरी धारा से पश्चिम में अमरकोट सहित सिन्ध नदी की पूर्वी धारा तक के समस्त भाग को भाषा, भूमि, रहन-सहन, इतिहास आदि की सास्कृतिक एव वैज्ञानिक दृष्टि से राजस्थान के अन्तर्गत लिया जाना चाहिये ।[1] अग्रेज शासको द्वारा, उनकी सुविधा के लिये निर्धारित राजपूताने की अवैज्ञानिक सीमाओ को सदा के लिये राजस्थान की सीमाएँ मान लेना सम्बन्धित जनता और राष्ट्र की उन्नति के लिये सर्वथा घातक है ।

राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत वर्तमान राजस्थान प्रान्त की बोलियो के साथ अजमेर-मेरवाडा, आबू-क्षेत्र, मालवा, भील-प्रदेश और पजाब, काश्मीर आदि के गुर्जर-क्षेत्र, तमिल देश के सौराष्ट्र-क्षेत्र तथा वणजारो, सांसियो, बालदियो आदि खानाबदोश और पशुपालक जातियो की समस्त बोलियाँ गिनी जाती है ।[2] राजस्थान के मारवाडी व्यापारियो के साथ राजस्थानी भाषा भारतवर्ष के कोने २ में पहुच गई है । राजस्थानी भाषा के बोलने वालो की सख्या लगभग दो करोड मानी गई है ।[3]

१—हमारा राजस्थान (श्रीपृथ्वीसिंह महता) पृष्ठ-२ ।

२—राजस्थानी भाषा पर राजस्थान विश्व विद्यापीठ, शोध-संस्थान, उदयपुर द्वारा आयोजित महाकवि सूर्यमल आसन-भाषण (श्रीसुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, एम ए., डी लिट्) पृष्ठ—५ और ९।

३—भारतवर्ष की कुछ अन्य भाषाओ के बोलने वालो की संख्या इस प्रकार है—
(१) तेलगू—२॥ करोड़। (२) तामिल—२॥ करोड़। (३) मराठी—२ करोड़। (४) पंजाबी—१॥ करोड़। (५) उड़िया—१ करोड़ १२ लाख। (६) कन्नड़—१ करोड़ १२ लाख। (७) गुजराती—१ करोड़ १० लाख। (८) मलयालम—९१ लाख। (९) सिन्धी—४० लाख। (१०) आसामी—२० लाख। (११) काश्मीरी—१४ लाख।

राजस्थानी भाषा का विस्तार-क्षेत्र भारत की अन्य सभी प्रान्तीय भाषाओं से बड़ा है।

प्राचीन राजस्थानी का विस्तार-क्षेत्र आज की अपेक्षा अधिक था। वर्तमान् राजस्थान-मालवा के अतिरिक्त समस्त गुजरात और सिन्ध, पंजाब तथा शूरसेन प्रदेश में मुख्यत. प्राचीन राजस्थानी, जिसको 'जूनी राजस्थानी' भी कहा गया है, प्रतिष्ठित थी। प्राचीन राजस्थानी का उक्त विस्तार-क्षेत्र गुर्जरों का भी विस्तार-क्षेत्र था, जिसमें एक ही भाषा एवं संस्कृति सामान्यत प्रचलित थी। १६ वीं शताब्दी में ही प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी ने गुजराती का स्वतन्त्र भाषा के रूप में विकास हुआ है। इसके पूर्व गुजराती राजस्थानी भाषा की बोली थी।[1] गुजराती के साथ सिन्धी और पंजाबी भाषाएं भी भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से राजस्थानी से मिलती-जुलती हैं। सिन्धी और पंजाबी पर विदेशी प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है। गुजराती की भाँति सिन्धी और पंजाबी की उत्पत्ति भी राजस्थानी से हुई है, ऐसा कहा जा सकता है।

(ख) राजस्थानी भाषा की सीमाएँ

राजस्थानी भाषा की वर्तमान सीमाएँ निम्नलिखित भाषाओं एवं बोलियों से मिलती हैं, अर्थात् राजस्थानी भाषा धीरे-धीरे निम्नलिखित भाषाओं एवं बोलियों में विलीन हो जाती हैं—

(१) उत्तर – पंजाबी। (२) पश्चिमोत्तर – हिन्दकी या पश्चिमी पंजाबी। (३) पश्चिम – सिन्धी, लहंदा और पंजाबी। (४) दक्षिण-पश्चिम – गुजराती। (५) दक्षिण – गुजराती और मराठी।

१—इंडियन एन्टीक्वेरी (Indian Antiquary) के सन् १९१४ से १९१६ तक के अंकों में डॉ एल पी तेस्सितोरी का सम्बन्धित निबन्ध (Notes on the grammar of the Old Western Rajasthani with special reference to Apabhramsa and to Gujarati and Marwari) और 'ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट ऑव बंगाली लैंग्वेज' (Origin and Development of Bengali Language) श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, एम. ए., डी लिट, भाग—१, पृष्ठ—९।

(६) दक्षिण-पूर्व – मराठी और बुन्देली (हिन्दी) । (७) पूर्व – बुन्देली और ब्रजभाषा (हिन्दी) । (८) उत्तर-पूर्व – बांगड़ (हिन्दी) ।

(ग) राजस्थानी भाषा का वर्गीकरण

श्रीजार्ज ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओ की जाँच-पडताल (Linguistic Survey of India) नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ मे राजस्थानी भाषा की बोलियो का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

(१) पश्चिमी राजस्थानी-मारवाडी-मेवाडी, ढाटकी, थली,बीकानेरी, वागडी, शेखावाटी, खेराडी, गोडवाडी, देवडावाटी, आदि ।
(२) उत्तर-पूर्वी राजस्थानी—अहीरवाटी और मेवाती ।
(३) मध्य-पूर्वी राजस्थानी-ढूंढाडी, तोरावाटी, खडी जैपुरी, काठेडा, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढी, चौरासी (शाहपुरी), नागरचाल, हाडोती (सिवाडी सहित) आदि ।
(४) दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी—मालवी (रागडी, सोंधवाडी आदि) ।
(५) दक्षिणी राजस्थानी – निमाडी ।

श्रीग्रियर्सन ने वणजारो, गूजरो, भीलो, गोरखो (गोरखो से सम्बन्धित बोलिया — नेपाली,कुमाउनी,गढवाली आदि) और भारतीय खानाबदोश जातियो की (सम्बन्धित बोलियाँ—पहाड़ो, भामटो, बेलदारी, ओडकी, लाडी, मछरिया, कजरी, डोमी आदि) बोलियो को राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत नही माना है ।

राजस्थान का अधिकाश भाग पहाडी और रेतीला होने से राजस्थान के लोग समय-समय पर बाहर जाते रहे हैं । प्राचीन-काल मे जब रेले और माल ढोने के अन्य आधुनिक साधन नही थे, तब राजस्थान के वणजारे तथा बालदिये आदि अपने सैकडो-हजारो बैलो पर सामान लाद कर व्यापार के लिये मार्ग मे पडाव डालते हुए देश-विदेश मे बहुत दूर दूर तक पहुँचते थे । इसी प्रकार गुर्जर, ईर, रेबारी, कीर और गायरी आदि पशुपालक जातियाँ दुष्काल पडने पर घास-पानी के अभाव में राजस्थान से बाहर जाती रही हैं । रेलो आदि के चलने से कई वणजारो, बालदियो आदि को पुन अपने राजस्थान मे आने का साधन अर्थात् व्यापारिक सामान नही मिला और उनमें से अधिकाश जहाँ थे वहीं बस गये । उक्त जातियाँ

राजस्थानी बोलियो का ही व्यवहार करती है। बहुत से गुर्जर लगभग एक हजार वर्ष पूर्व उत्तरी राजस्थान से काश्मीर एव अन्य उत्तरी पहाडी घाटियो में जा कर बस गये थे, इसलिये इनकी बोलियाँ राजस्थानी के अन्तर्गत मानी जानी चाहिये। भीली बोलियाँ गुजराती से प्रभावित है, किन्तु जैसा कि स्पष्ट है, गुजराती की उत्पत्ति राजस्थानी से हुई है तो भीली बोलियो को गुजराती के अन्तर्गत नही, राजस्थानी के अन्तर्गत जानना चाहिये। इस विषय में एक बात यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि प्राचीन काल में राजस्थान के अधिकाश भागो में भीलो के राज्य थे। इसलिये वीर भील जाति के लोग स्वभावत राजस्थान एव राजस्थानी भाषा से दूर हटना स्वीकार नही करेंगे। राजस्थान में भीलो का प्रमुख क्षेत्र 'वागड' और भीली बोली 'वागडी' के नाम से प्रसिद्ध है। नेपाल की तराई के बहुत से गोरखे भी राजस्थान से ही जा कर बसे थे और आज भी वे अपनी बोलियो को सुरक्षित रक्खे हुए है, इसलिये इनकी बोलियाँ भी राजस्थानी से सम्बन्धित है।[1] इस विषय में पूरी जाँच-पडताल की आवश्यकता है कि इन बोलियो का राजस्थान से कितना सम्बन्ध है तथा इन पर बाहरी प्रभाव किस प्रकार पडा है।

(घ) राजस्थानी भाषा का नामकरण

भारतवर्ष की कई अन्य आधुनिक भाषाओ की भाँति राजस्थानी भाषा का नाम 'राजस्थानी' भी आधुनिक विद्वानो की देन है, और यह नाम अब देश-विदेश में सर्वत्र प्रचलित हो गया है।

'राजस्थानी' नाम 'राजस्थान' के आधार पर प्रचलित हुआ है। कर्नल जेम्स टाड के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ "एनाल्ज एण्ड अन्टिक्विटीज आव राजस्थान" (Annals and Antiquities of Rajasthan) के प्रकाशन से राजस्थान की महिमा सर्वत्र स्थापित हुई है। किन्तु समस्त राजस्थानी जनता का एकता सूचक नाम 'राजस्थान'

१—श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या भी गूजरी, भीली आदि बोलियों को राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत ही मानते हैं (राजस्थानी भाषा पर नूर्नल-आन्न-भाषण) पृष्ठ-१।

या 'राजथान-रायथाण' पहले से जनता मे प्रतिष्ठित था, जिसका आधार कर्नल जेम्स टाड ने लिया है। राजस्थानी भाषा-भाषियो के कई राजनैतिक विभागो मे बँटे हुए रहने से और राजस्थान के बहुत विस्तृत होने से अब तक राजस्थान के विभिन्न भागो के विभिन्न नाम रहे है।[1] राजस्थानी भाषा की बोलियो के विविध नाम भी राजस्थान के विभिन्न भागो के अनुसार प्रचलित हुए है। किन्तु समस्त राजस्थान की सास्कृतिक एव भाषा-वैज्ञानिक एकता पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित रही है। इसलिये प्रान्तीय एकता-सूचक नाम 'राजस्थान' सर्वग्राह्य सिद्ध हुआ है। साथ ही सम्बन्धित बोलियो मे भाषा-वैज्ञानिक एकता होने से प्रान्तीय भाषा के रूप मे 'राजस्थानी' को मान्य करना आवश्यक हुआ है।

राजस्थानी, मुख्यत पश्चिमी राजस्थानी को प्राचीन काल मे 'मरुभाषा' कहा गया है।[2] राजस्थानी भाषा का साहित्यिक रूप मुख्यत मारवाडी रहा है और इसी रूप मे प्राचीन साहित्य भी बडे परिमाण मे उपलब्ध होता है। राजस्थान के वाहर राजस्थान के लोग, फिर चाहे वे किसी भी भाग के निवासी हो मारवाडी कहे जाते है और उनकी भाषा भी मारवाडी मानी जाती है। मारवाड राजस्थान का विशेष भू-भाग है। विस्तार-क्षेत्र, जन-सख्या और साहित्य की दृष्टि से मारवाडी कई भारतीय भाषाओ से भी वढ कर है। मारवाडी और राजस्थान की अन्य बोलियो में विशेष अन्तर नही है। राजस्थानी की एक विशेष साहित्यिक शैली 'डिंगल' का मूल आधार भी मारवाडी है, जिसको राजस्थान के समस्त भागो के साहित्यकारो ने अपनाया है। इसलिये 'मारवाडी' को डा० ग्रियर्सन और श्रीसुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के शब्दो मे 'खडी राजस्थानी' (Standard) मानना सर्वथा उपयुक्त है।

---

१ – राजपूताने का इतिहास (श्रीगौरीशकर हीराचन्द ओझा, डी, लिट्) भाग–१, पृष्ठ – २।

२ – श्रीउद्योतन द्वारा ८ वी सदी में सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "कुवलयमाला" में भारतवर्ष की तत्कालीन प्रमुख भाषाओ में मरु देश की भाषा "मरुदेशिया" का भी उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार १७ वी सदी में श्रीअबुलफजल ने भी "आइने अकबरी" में "मरुभाषा" को स्वतन्त्र रूप में मान्य किया है।

दूसरा अध्याय

राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति और विकास

(क) आर्य - भाषा - परिवार

ससार के विभिन्न भागो में विभिन्न प्रकार की जनता वसी हुई है। आधुनिक खोज के अनुसार ज्ञात हुआ है कि उत्तरी भारत, ईरान-अफगानिस्तान आदि मुस्लिम-प्रदेश और युरोप की अधिकाश जनता मूलत आर्य हैं। समस्त आर्य-जाति से सम्वन्धित भाषा - परिवार को 'भारत-जर्मनिक' या 'भारत-यूरोपीय' नाम दिया गया है। किन्तु 'भारत-जर्मनिक' कहने से शेष युरोप और ईरान, अफगानिस्तान का इस परिवार से सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता तथा 'भारत-युरोपीय' कहने से ईरान-अफगानिस्तान आदि की भाषाओ का समावेश इस परिवार में नहीं ज्ञात होता। साथ ही दक्षिण - भारत की भाषाएँ "द्रविड-परिवार" की है, जिनका समावेश उक्त परिवार में नही किया जा सकता। इसलिये उक्त दोनो ही नाम दोष-पूर्ण है। इस भाषा-परिवार का नाम "आर्य-भाषा-परिवार" सर्वथा उपयुक्त जान पडता है, जिससे समस्त आर्य - जनता की मूल एकता का वोध होता है। प्राचीन काल की वैदिक-सस्कृत, ग्रीक, लैटिन, फारसी और आधुनिक काल की अग्रेजी, हिन्दी, वगाली तथा राजस्थानी आदि प्रमुख भाषाएँ आर्य - भाषा परिवार से सम्वन्ध रखती है।

(ख) प्राचीन भारतीय आर्य - भाषा - काल

आर्य लोग अपनी जन्म-भूमि[१] से धीरे-धीरे युरोप और ईरान-अफगानिस्तान के साथ उत्तरी भारतवर्ष में भी फैल गये। इस प्रकार आर्य-भाषा-परिवार की भारतीय शाखा अवतीर्ण हुई। आर्यों ने विविध प्रकार के जलवायु में, विविध प्रकार की परिस्थितियो में और विविध प्रकार की

१—आर्यों की जन्म-भूमि अर्थात् आदि-देश अभी तक अनिश्चित है।

जातियो के सम्पर्क से अपनी भाषाओ का विकास किया है। इसलिये आर्य-भाषा-परिवार की भाषाओ मे बहुत अन्तर उपस्थित हो गया है। प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा के रूप हमे ऋग्वेद से प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद का समय कम से कम १,५०० ई० पूर्व माना गया है। इससे पूर्व की किसी भाषा के रूप विश्व में नही मिलते। हडप्पा और मोहेनजोदडो की खुदाई ने लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व की भारतीय सभ्यता पर प्रकाश पडा है। उक्त खुदाई से प्राप्त तामडा, पन्ना आदि के वैज्ञानिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि उनका सम्बन्ध वर्तमान अलवर,किशनगढ और मेवाड की अर्वली-पहाडियो की खानो से है। राजस्थान में वैराट की खुदाई से भी प्रागैतिहासिक नव्याश्म युगके कई हथियार मिले हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक काल से पूर्व, आज से लगभग ६ हजार वर्ष पहले राजस्थान में सभ्यता का उदय हो चुका था। इस सभ्यता को भारतवर्ष की प्राचीनतम सभ्यता कहा जा सकता है। किन्तु इस काल की भाषा का कोई स्पष्ट रूप नही मिलता।

वैदिक भाषा अपने समय मे लगभग सारे उत्तरी भारत मे फैली हुई थी। इस वैदिक भाषा मे तीन प्रकार के स्थान-भेद पाये जाते है। १ – पश्चिमी पजाब की बोली, जो ईरान के पडोस से सम्बन्धित थी। ऋग्वैदिक भाषा को 'छान्दस' कहा गया है, जिसका आधार यही बोली थी। २ - उत्तरी मध्यप्रदेश की बोली और ३– मध्य देश के पूरब की बोली। वेदो का निर्माता कोई विशेष साहित्यकार नही हुआ। वेदो का निर्माण वास्तव में जनता की लोक-साहित्य-निर्माणकारी सामूहिक अभिव्यक्ति द्वारा हुआ था। इसलिये ईश्वर ही वेदो का निर्माता मान लिया गया। बहुत समय तक वेद मौखिक ही प्रचलित रहे और फिर विनाश अथवा परिवर्तन की आशका के कारण लिपिबद्ध कर लिये गये। हमारे प्राचीनतम साहित्य में सामूहिक अभिव्यक्ति द्वारा लोक-साहित्य-निर्माण की परम्परा ही मिलती है, जिसमें वेदो के अतिरिक्त बहुत से अन्य ग्रन्थ भी मिलते हैं। व्यक्तिगत साहित्य-निर्माण की परपरा पीछे की है। इसलिये वेदो की भाषा लौकिक ही मानी जा सकती है।

जनता द्वारा धीरे-धीरे वैदिक भाषा में परिवर्तन हो गये। ऐसी अवस्था में 'वैयाकरणो ने नियमो-उपनियमो द्वारा इसको शुद्ध अर्थात् 'सस्कृत' करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। अन्त में पाणिनी (५०० ई० पूर्व) ने अपने व्याकरणगत नियमो-उपनियमो द्वारा इस भाषा को पूर्ण रूपेण 'सस्कृत' कर परिवर्तनो से सदा के लिये सुरक्षित कर दिया। तव से सस्कृत भाषा आज तक अपरिवर्तनशील वनी हुई है और इसमें वरावर साहित्य-निर्माण का कार्य होता रहा है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय-आर्य-भाषा के विकास का यह काल १५०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक माना जाता है।

(ग) राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति

लौकिक भाषा का सस्कृत रूप स्थिर हो जाने पर भी जनता द्वारा अपनी भाषा के विकास का कार्य होता रहा। इस प्रकार इस भाषा का रूप परिवर्तित हो गया और जनता की सुविधा के लिये इसमें साहित्य भी वनने लगा। इस नवविकसित एव परिवर्तित भाषा को 'प्राकृत' कहा गया। इसके प्रारभिक रूप को 'पाली प्राकृत' और 'अर्धमागधी प्राकृत' कहा गया। जनता के लिये सर्वथा सुगम, जन-भाषा के इन नवीन रूपो को वौद्ध और जैन साहित्यकारो ने अपनाया तथा इनमें साहित्य-निर्माण का कार्य किया। पीछे से मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृतो के रूप भी साहित्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गये। कालान्तर में वैयाकरणो ने प्राकृत को भी अपने नियमो से स्थिर कर दिया। किन्तु जन-भाषा का परिवर्तनशील प्रवाह नही रुका और वह जनता की सुविधा के अनुकूल विकसित होता रहा। फिर जनता से निकट सम्पर्क रखने वाले साहित्यकारो ने इस नवीन विकसित रूप को अपनाया। ६ठी सदी के आसपास विकसित लोक-भाषा के इस नवीन रूप को 'अपभ्रश' कहा जाने लगा। अपभ्रश के मुख्यत. तीन रूप माने गये है–नागर, ब्राचड और उप नागर। इनमें से पश्चिमी भारतवर्ष की 'नागर अपभ्रश' ही मुख्य मानी गई है। नागर अपभ्रश में प्रचुर मात्रा में उत्कृष्ट साहित्य

का निर्माण हुआ और यह भाषा अपने समय मे भारत की प्रमुख साहित्यिक भाषा बन गई। नागर-अपभ्रश राजस्थान की अपनी भाषा थी। गुजरात तब सास्कृतिक दृष्टि से पूर्ण रूपेण राजस्थान का ही भाग था। इसी महिमामयी नागर-अपभ्रश से सन् १००० ई० के आसपास जन-भाषा राजस्थानी की उत्पत्ति हुई। वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओ मे सर्व प्रथम साहित्यिक रूप मे प्रतिष्ठित होने वाली भाषा भी राजस्थानी ही है।

राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति के विषय में यह बात विशेष रूप से ध्यान मे रखने योग्य है कि राजस्थान-गुजरात में प्रचलित जिस मूल भाषा से राजस्थानी की उत्पत्ति हुई है, उसका सम्बन्ध सिन्ध-पजाब से रहा है, मध्य प्रदेश से नही। राजस्थान-गुजरात में आर्य-भाषा का प्रवेश भी मध्य देश से नही हो कर पजाब-सिन्ध से हुआ है। अशोक के गिरनार लेखो की भाषा से यह स्पष्ट है कि अशोक के समय मे जो भाषा यहाँ प्रचलित थी वह शौरसेनी या मध्यदेशीय नही थी। अशोक-काल के उपरान्त पश्चिमी भारतवर्ष अर्थात् राजस्थान-गुजरात, पजाब और सिन्ध की भाषा मे एक ही प्रकार की विशेषताएँ प्रकट होती रही। ये विशेषताएँ शौर-सेनी या मध्यदेशीय भाषा से मेल नही खाती है। 'द्व' का 'ब' होना ('द्वादश' का 'द्वादस', 'द्वौ' का 'बे', 'द्वारिका' का 'बारिका'), 'क्ष' का 'छ' होना ('क्षुद्र' का मध्यदेश मे 'खुद्द' किन्तु सौराष्ट्र मे 'छुद'–'छुद्र', 'क्षमा' का 'छमा' आदि), सस्कृत 'स्यति', 'स्यत ', 'स्यन्ति' के समान रूप विकसित होना और अघोष महाप्राण वर्णों (च, झ, ढ, भ आदि) का विशेष उच्चारण एव 'ह'-कार की विकृति आदि राजस्थानी, गुजराती, पजाबी, और सिन्धी में रही हुई समान विशेषताओ से यह स्पष्ट है कि राजस्थान की मूल प्राचीन भाषा एव राजस्थान की प्राकृत-अपभ्रश, मध्यदेशीय या शौरसेनी भाषा से विकसित नही हुई है।[1] इस प्रकार राजस्थानी मध्यदेशीय भाषा के अन्तर्गत नही मानी जा सकती।

१– विशेष देखिये–राजस्थानी भाषा पर महाकवि सूर्यमल-आसन-भाषण (श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, एम० ए०, डी० लिट्) पृष्ठ ४५ से ५५।

(घ) प्राचीन राजस्थानी

'नागर अपभ्रंश' जैसी सुसपन्न भाषा की इकलौती पुत्री राजस्थानी का पोषण १० वी शताब्दी तक मचित किये हुए उत्कृष्ट भारतीय भाषा-तत्व से हुआ, इसलिये राजस्थानी शीघ्र ही शक्ति-सम्पन्न वन गई। जनता के निकट सपर्क से पलने वाली राजस्थानी भाषा ने अपनी माँ 'अपभ्रंश' और दादी 'प्राकृत' की मूल्यवान धरोहर की अवहेलना कर सस्कृत से सीधा सम्बन्ध नही जोडा, जिससे राजस्थानी को सदा ही जन-शक्ति का सहयोग मिलता रहा। जिस प्रकार लोक-भाषा 'प्राकृत' और 'अपभ्रंश' को महत्त्व दिया गया उसी प्रकार जन-भाषा राजस्थानी को भी विशेष रूप में सम्मानित किया गया।

'अपभ्रंश' और प्राचीन राजस्थानी के काल में सीमा-रेखा खीचना कठिन है। क्योकि राजस्थानी भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव इतना अधिक मिलता है कि राजस्थानी भाषा का पूरा ज्ञान नही रखने वाले व्यक्ति वर्तमान या मध्यकालीन राजस्थानी रचना को भी वहुत पुरानी समझ बैठते है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र (२री–३री शताब्दी)[1] और वलभी नरेश धरसेन द्वितीय के शिलालेख (७ वी शताब्दी का प्रारम्भ)[2] से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश २री-३री शताब्दी मे केवल वोलचाल की भाषा थी तथा वाद में ६ठी-७वी शताब्दी तक साहित्यिक क्षेत्र में सम्मानित हुई। इसी प्रकार राजस्थानी का प्रारम्भ में अर्थात् १००० ई० के पूर्व वोलचाल की भाषा रहना निश्चित है। १००० ई० के वाद से राजस्थानी के दर्शन साहित्यिक क्षेत्र में भी होने लगते है। इस प्रकार प्राचीन राजस्थानी का समय १००० ई० से प्रारम्भ हो कर १५००ई० तक पहुँचता है। क्योकि १६ वी शताब्दी से ही, जैसा कि स्पष्ट कर दिया गया है गुजराती राजस्थानी से अलग हो कर स्वतत्र भाषा के रूपमें प्रतिष्ठित

१– एवमेतत्तु विज्ञेय संस्कृत प्राकृते तथा।
अथ ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि देशभाषा प्रकल्पनम्॥

२– संस्कृत-प्राकृतापभ्रंश-भाषात्रय-प्रतिबद्ध-प्रबंधरचना-निपुणतरांतःकरण।

हो जाती है, राजस्थानी की पिंगल एवं डिंगल शैलियाँ परिपक्व हो जाती हैं और मीराँ एवं अन्य सन्त-कवियों की साधना के फलस्वरूप राजस्थानी की लौकिक शैली भी प्रतिष्ठित हो जाती है ।

प्राचीन राजस्थानी के नाम के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है । श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इस भाषा का नाम 'पुरानी हिन्दी' दिया है ।[1] श्रीमोहनलाल दलीचंद देसाई इसे 'जूनी-हिन्दी-जूनी-गुजराती' मानते हैं ।[2] साथ ही गुजरात के कुछ विद्वान् इस भाषा को केवल 'जूनी गुजराती' मानते हैं ।[3] सर्व श्री पं० सूर्यकरण पारीक, पं० नरोत्तमदास स्वामी और डा० रामसिंह इसको 'जूनी राजस्थानी' न मान कर 'उत्तरकालीन अपभ्रंश' मानते हैं ।[4] इन सब के विपरीत डा० तेस्सितोरी ने इसको 'प्राचीन राजस्थानी' ही माना है और उसके पश्चिमी रूप (प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी) से १६ वीं सदी में गुजराती की उत्पत्ति मानी है ।[5]

प्राचीन राजस्थानी की कई रचनाएँ जनता द्वारा आज केवल वर्तमान राजस्थानी में ही कुछ परिवर्तित रूप में कही-सुनी जाती हैं, गुजराती या हिन्दी में नहीं । वर्तमान राजस्थानी की मूल रचनाएँ जिस भाषा में मिलती हैं, उसे प्राचीन राजस्थानी के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है ? उदाहरणार्थ श्रीहेमचन्द्राचार्य द्वारा प्राकृत व्याकरण के ८ वें अध्याय में उद्धृत कुछ 'दूहों' को देखिये

प्राचीन राजस्थानी

वायसु उड्डावन्तिअए, पिउ दिट्ठउ सहसत्ति ।
अधा वलया महिहि गय, अधा फुट्ट तडत्ति ॥

१—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण भाग-२ ।
२—जैन गुर्जर-कविओ, प्रथम भाग, प्रस्तावना, पृ०—१४ ।
३—आपणा कविओ (श्री० के० का० शास्त्री) ।
४—ढोला मारू रा दूहा, प्रस्तावना, पृ०—१४० ।
५—इन्डियन एन्टीक्वेरी Indian Antiquary के सन् १९१४ से १९१६ तक के अंकों में प्रकाशित निबन्ध

वर्तमान राजस्थानी

काग उड़ावण धण खड़ी, आयो पीव भड़क्क।
आधी चुड़ी काग गल, आधी गई तड़क्क॥

प्राचीन राजस्थानी

पुत्ते जाएँ कवणु गुणु, अवगुण कवणु मुएण।
जा बप्पीकी भुंहडी, चम्पिज्जई अवरेण॥

वर्तमान राजस्थानी

बेटा जाया कवण गुण, अवगुण कवण धिवेण।
जा ऊभा घर आपणो, गंजीजै अवरेण॥

प्राचीन राजस्थानी

जइ यहु रावणु जाइयउ, दह मुह इक्कु सरीरु।
जणणि वियंभी चिंतवई, कवणु पियावउ खीरु॥

वर्तमान राजस्थानी

राजा रावण जलमियो, दस मुख एक सरीर।
जणनीने सासो भयो, किण मुख वालू खीर॥

साथ ही मध्यकालीन और वर्तमान राजस्थानी की उच्चारण, व्याकरण, शब्दकोश, लिपि और साहित्य से सम्बन्धित समस्त विशेषताएँ, जिन पर आगे के अध्याय में प्रकाश डाला जायगा, मूलत इस भाषा मे मिलती है। इतना ही नही राजस्थानी में प्रतिफलित अनुपम विषय एव छन्द-योजना आदि का बीजारोपण भी इसी भाषा में हुआ है। ऐसी अवस्था में इसको प्राचीन राजस्थानी के रूप में नही मानना राजस्थानी की जडो पर कुठाराघात करना है। खडी बोली हिन्दी को छोडिये, ब्रज और अवधी में भी इस भाषा की कोई विशेषता नही मिलती है। हिन्दी के आदि महाकवि चन्द और आदि-काव्य पृथ्वीराज रासा कहा गया है, जिसकी प्राचीनता १६ वी सदी से अधिक सिद्ध नही की जा सकी है। यदि पृथ्वीराज रासा १२वीं शताब्दी में लिखा भी गया होगा तो उसकी मूल भाषा अपभ्रंश या

प्राचीन राजस्थानी पिंगल ही होगी । यही अवस्था इस काल से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थो की भी है, तो फिर कैसे इसको पुरानी हिन्दी कहा जा सकता है ? हां, यदि हिन्द देश की प्रत्येक भापा को अर्थात् बगाली, मराठी, राजस्थानो, व्रज, तामिल, तैलगू आदि सब को 'हिन्दी' मानते हुए इसे प्राचीन राजस्थानी के स्थान पर 'पुरानी हिन्दी' कहा जाय तो किसी को आपत्ति नही हो सकती ।

जहाँ तक 'प्राचीन राजस्थानी' को 'जूनी गुजराती' मानने का प्रश्न है, यही कहना चाहिये कि गुजराती की उत्पत्ति 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' से हुई है और फिर गुजराती मे राजस्थानी की मर्यादा का पालन नही किया गया है । गुजराती के आदि कवि नरसी मेहता का समय भी १५०० से १५५८ ई० माना गया है । ऐसी अवस्था मे 'प्राचीन राजस्थानी' को 'जूनी गुजराती' स्वीकार करना राजस्थानी कहावत के अनुसार 'ऊदली लारां डायचो' (अन्यत्र चली जाने वाली स्त्री के साथ दहेज) माना जायगा । राजस्थानी की समस्त प्रमुख विशेपताये प्राचीन राजस्थानी में भली प्रकार से प्रकट हो चुकी थी । केवल 'अपभ्रश' का प्रभाव ही शेप था । तो फिर 'प्राचीन राजस्थानी' को उत्तरकालीन अपभ्रश कहना भी न्याय-सगत नही जान पडता ।

जन-भापा राजस्थानी वैदिक भापा (छान्दस), प्राकृत और अपभ्रश-नामक लोक-भापाओ की एक मात्र उत्तराधिकारिणी बन कर भारतीय जन साहित्य के प्रवाह को निरन्तर चालू रखने मे समर्थ हुई है । प्राचीन राजस्थानी हमारे भारतवर्ष की वर्तमान और प्राचीन जन-भापाओ की शृखला को जोडने वाली एक विशेप कडी है ।

"प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी" अपने समय की प्रधान साहित्यिक भापा मानी गई है । साहित्यिक भापा के रूप में प्राचीन राजस्थानी का प्रसार न केवल समस्त राजस्थान-गुजरात मे था, वरन् सिन्ध, पजाब और कबीर[1] की रचनाओ से प्रमाणित है कि पूर्व मे काशी तक था ।

१—देखिये 'ढोला मारू रा दूहा' [illegible]

जैन आचार्यो एव साधु-साध्वियो और यतियो ने प्राचीन राजस्थानी में प्रचुर मात्रा में साहित्य का निर्माण किया। इन्होने पद्य के साथ गद्य में भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। चारण कवियो ने भी प्राचीन राजस्थानी में अपनी विशेष शैली "डिंगल" की नीव रक्खी और इसमें बहुत से उत्कृष्ट गीत और दूहे आदि लिखे। इस काल का राजस्थानी भाषा में जितना अधिक साहित्य मिलता है, उतना किसी अन्य भारतीय भाषा में नही मिलता।

प्राचीन राजस्थानी के कुछ नमूने इस प्रकार है—

संदेसडउ सवित्थरउ, पर मइ कहण न जाइ।
जो कालंगुलि मूंदडउ, सो बाहडी समाइ॥
तुम्हारइ जिन यह हियउ, पिय उक्कंठि करेइ।
विरह हुयासि दहेवि करि, आसाजलि सिंचेइ॥

—अब्दुलरंहमान (१०१० ई०)।

गयण-ग्ग-संलग्ग लोल-कल्लोल-परंपरु।
घिक्कारपुक्कारउ नक्क-चक्क-चंकमण-दुहकरु॥
उच्छलंत-गुरु-पुच्छ-मच्छ रिञ्छोलि निरंतरु।
जलन्माण जालाजडाल वड्वानल दुत्तरु॥
आवत्त सयायलु जलहि लहु गोपदुं जिवँ ते नित्थरहि।
नीसेस-वनए-गण-निट्ठवणु पासनाहु जे संभरहि॥

—सोमप्रभु सूरि (११८५ ई०)।

भअ भञ्जिअ वंकिअ वहरि तरुणि,
जण भअरव नेरिअ सद्द पले।
नहि लोट्टइ पिट्टइ रिउ-सिर डट्टइ,
जअक्खप वीर हमीर चले।

"राजा अनइ महामात्य बे जणा अश्वापहारइ तउ अटवी माहि गया। भूखिया हूया। वणफल खाधा। नगरि आविया। राजा सूपकार तेडी करी कहइ 'जिके भक्ष्य-भेद संभवइ ति सगलाई करउ' सूपकारे कीधा। राजा आगइ आणिया। राजेंद्रि चींतविउ-मधुर मोदक पूपकादिक भक्ष्य-भेद पाछेई भावेसिइं, इणि कारणि पहिलउ वाकुल ढोकलादिक भक्ष्यभेद भली करी पाछइ माहुगहार-मशाणु कीधउ।"

—तरुणप्रभ सूरि (१३५५ ई०)

एकणि वनि वसन्तडा, एवड अन्तर काइ।
सीह कवड्डी ना लहइ, गैवर लक्ख विकाइ॥
गैवर गलै गल थीयौ, जहँ खँचै तहँ जाइ।
सीह गलथ्थण जे सहै, तो दह लक्ख विकाइ॥

—सिवदास चारण (१४१४ ई)।

सीयालइ तउ सी पडइ, उन्हालइ लू वाइ।
वरसालइ भुइँ चीकणी, चालण रुत्ति न काइ॥
धरती जेहा भरखमा, नमणा जेही केलि।
मज्जीठाँ जिम रच्चणाँ, दई सु सज्जण मेलि॥

—ढोला मारूरा दूहा (१४७४ ई०)।

(ड) मध्यकालीन राजस्थानी

सोलहवी शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ मे ही राजस्थानी से गुजराती अलग भाषा के रूप मे विकसित होने लगी। गुजरात पर पूर्ण रूपेण विदेशी शासको का आधिपत्य स्थापित हो जाने से राजस्थान और गुजरात की राजनैतिक एकता नष्ट हो गई, किन्तु चारण-कवियो और जैन-आचार्यो ने दोनो प्रान्तो की सास्कृतिक एकता को बनाए रखने का बराबर प्रयत्न किया। कई विशिष्ट चारणो और जैन आचार्यो की रचनाएँ राजस्थान-गुजरात में समान रूप से प्रचलित रही। राजस्थानी भाषा, साहित्य, इतिहास एव सस्कृति के द्वारा गुजराती भाषा और साहित्य बराबर प्रेरणा एव पोषणशक्ति प्राप्त करते रहे हैं।

'डिंगल' जिसकी नीव प्राचीन राजस्थानी मे पड चुकी थी, मध्यकाल म अपने विकास की चरम सीमा पर पहुच गई। डिंगल विकसित होती हुई

वोलचाल की राजस्थानी से कुछ दूर जा पडी । इसमें जानबूझ कर द्वित्त वर्णों का प्रयोग किया जाने लगा भौर शब्दो की तोड-मरोड भी बहुत वढ गई । मारवाडी के साहित्यिक रूप में 'डिंगल' स्थिर सी हो गई भौर समस्त राजस्थान के साहित्यकार, मुख्यत. चारण कवि इसमें साहित्य-रचना करने लगे । डिंगल में गीत भौर दूहे छद पर्याप्त मात्रा में लिखे गये, जो आज भी अपनी उत्कृष्टता के कारण जनता में प्रचलित हैं ।

'डिंगल' के स्थिर-साहित्यिक हो जाने पर मध्यकालीन राजस्थानी की लौकिक शैली भी अस्तित्व मे आई । मीराँ ने सरल, सरस, लौकिक राजस्थानी में अपने पद प्रस्तुत कर अखिल भारतीय लोकप्रियता प्राप्त की । अन्य कवियो-कवियत्रियो ने भी लौकिक राजस्थानी में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की । मध्यकालीन राजस्थानी की लौकिक शैली में सन्त-साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलव्व होता है । जैन सन्त-साहित्य पर अपभ्रश का प्रभाव अधिक मिलता है

इसी काल में राजस्थान का सम्वन्ध दिल्ली-आगरा से भी स्थापित हुआ । मध्यदेश से सम्वन्वित कवियो ने व्रज-प्रभावित राजस्थानी में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की । राजस्थानी की व्रज या शौरसेनी से प्रभावित यह शैली 'पिंगल' के नाम से प्रसिद्ध है । कई सन्तो ने भी इसमें अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की है । 'पिंगल' का मुख्य क्षेत्र पूर्वी राजस्थान रहा ।

मध्यकालीन राजस्थानी पद्य के अतिरिक्त गद्य में भी वहुत विकसित हुई । इस काल की ख्यात, वात, वसावली, कथा, हाल, हकीगत, विगत, पीढी, याद आदि राजस्थानी गद्य की रचनाए प्रचुर मात्रा में मिलती है । साथ ही हितोपदेश, पंचतत्र, सिंहासन-वत्तीसी आदि के अनुवाद, टीकाओ तथा शिलालेखो भौर पट्टो-परवानो के रूप में भी राजस्थानी गद्य मिलता है ।

इस प्रकार १५०० ई० से १८५० ई० तक मध्यकालीन राजस्थानी अपनी विविध शैलियो में सुप्रतिष्ठित हो जाती है । मध्यकालीन राजस्थानी में संस्कृत के अतिरिक्त अरबी-फारसी के

जाता है। मध्यकालीन राजस्थानी भाषा की कुछ रचनाओं के नमूने इस प्रकार हैं—

लागी मोहि राम खुमारी हो ॥ टेक ॥
रमझम बरसे मेहड़ो, भींजै तन सारी, हो।
चहुँ दिस चमकै दामणी, गरजै घन भारी, हो ॥
सतगुर भेद बताइया, खोली भरम किंवारी, हो।
सब घट दीसै आतमा, सबहींसूँ न्यारी, हो ॥
दीपक जोऊँ ग्यानरो, चढ़ूँ अगम अटारी, हो।
मीराँ दासी रामरी, इमरत बलिहारी, हो ॥

—मीरांबाई (१४९९-१५४७ ई०)।

है अकबर घर हाण, डाण अहे नीची दीसट।
तजै न ऊँची ताण, पोरस राण प्रतापसी ॥ १ ॥
उहड़ रीठ अणपार, पीठ लगा लागा पिसण।
बँदीगार बकार, पहटउ उदियाचल पतउ ॥ २ ॥

—दुरसाजी आढा (१५३६-१६५६ ई०)।

कालि करि कांठलि उजलि कोरण धारे श्रावण धरहरिया,
गलि चलिया दसौं दिसि जलग्रभ थंभि न विरहिणि-नयण थिया।
बरसतइ दड़ड़ नड़ अनड़ वाजिया सघण गाजियउ गुहिर सदि,
जलनिधि ही समाइ नहिं जल, जलवालां न समाइ जलदि।
धर स्यामा सरिस स्यामतर जलधर गेघूचे गलिवाहा घाति,
ग्रसि तिणी सन्ध्यावदण भूला रिखय न लखे सकइ दिनराति ॥

—महाराज पृथ्वीराज (१५५०-१६०१ ई०)।

कोई समद माहे साह गयो थो। तिकै एक ग्रतक देह दीठी थी। तिणरी वात राणा कुम्भानू कही। तद राणो कुंभो चित भरमीको हूयो। क्युं होरो क्युं ही बोलै। तद कुम्भलमेर रहता। सु गढ उपर एक ठो मामा कुंड छै। मामा वद छै। तठै राणो बैठो थो। कुम्भारे बेटो सुदायत उदो थो। तिण मार कटारी यांने आप पाट बैठो।

—मुहणोत नैणसी (१६११-१६७१ ई०)।

कठन्री ग्रीवा श्रुत कुण्डल चँदण निले तिलक दुत चन्द ।
सिर सिरपेच सुघट हीरान्द, कीट, मुगट सोभै सुरकंद ।।
जलहर वरण भगत भव भंजण, मीता मन रंजण सजसाथ ।
मो मन आय सु जाण सिरोमण, निन हथ वाण वसो रघुनाथ ।।

—मंछाराम सेवक (१७७४-१८३६ ई०) ।

(च) आधुनिक राजस्थानी

राजस्थानी भाषा-विकास के आधुनिक काल का प्रारम्भ सन् १८५० ई० से मानना चाहिये । इस समय तक समस्त राजस्थान पर अग्रेज शासको का अधिकार स्थापित हो चुका था । आधुनिक काल में भी राजस्थानियो को अपने देश की स्वाधीनता के लिये सघर्ष सहना पडा है । राजस्थानी जनता के स्वाधीनता-सग्राम में सगठन और प्रचार आदि के महत्वपूर्ण कार्यों के लिये राजस्थान के जन-कवियो ने सरल-सरस राजस्थानी भाषा में ही अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की । जनता में इन रचनाओ का बहुत प्रचार हुआ । राजस्थानी शौर्य के गायक चारण-कवियो ने भी 'डिंगल' को विविध प्रकार के बन्धनो तथा स्थिरता से छुटकारा दिलवा कर जनता के निकट ला रक्खा । उदाहरण के लिये महाकवि सूर्यमल, केसरीसिंह बारहठ (कोटा) और नाथूदान महियारिया आदि की डिंगल रचनाएँ मध्यकालीन डिंगल की अपेक्षा अधिक सरल और सरस हैं ।

राजस्थानी भाषा की लौकिक शैली जिसको मीरांबाई और कई अन्य सन्तो ने प्रतिष्ठित किया था, आधुनिक काल में विकसित होती रही है । महाराज चतुरसिंह जैसे साहित्यकारों ने इसी शैली में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर जनता में लोकप्रियता प्राप्त की है ।

विदेशी शासको ने भारतीय शासन को पूर्ण रुपेण अपने अधिकार में रखने के लिये वीरता के क्षेत्र में प्रतिष्ठित राजस्थानी जनता की वीर भावनाओ को दबाने के कई प्रयत्न किये । अग्रेज शासको ने स्थानीय नरेशों और उनके कृपापात्र अधिकारियो पर विश्वास नहीं कर बाहर से अपने चुनाव

के अधिकारी और अन्य राज्य-कर्मचारी राजस्थान मे भेजने प्रारम्भ किये। साथ ही राजस्थानियो के शिक्षा-सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्यो को भी अग्रेज शासको ने अपने विश्वासपात्र, गैर राजस्थानी अधिकारियो की देखरेख मे विशेष साँचे में ढाल दिया, जिसमे मातृभाषा राजस्थानी का सर्वथा वहिष्कार कर दिया गया। राजस्थान की विभिन्न रियासतो का अधिकाश कार्य अब तक राजस्थानी भाषा में होता था, राजकीय कार्यवाही सम्बन्धी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने वाले पत्र इस कथन के प्रमाण के लिये पर्याप्त है। किन्तु राजस्थानी भाषा से सर्वथा अपरचित, बाहरी अधिकारियो के कारण राजस्थानी भाषा को धीरे २ राजकाज से अपदस्थ होना पडा और जनता की कठिनाई बढती गई।

राजस्थान में लेखन, भाषण एव प्रचार-प्रकाशन सम्बन्धी कार्यो पर कडे प्रतिबन्ध लगाये गये। इससे राजस्थानी भाषा के प्रकाशन मे वडी बाधा उपस्थित हुई। राजस्थानी भाषा में पुस्तकें और पत्र आदि नही प्रकाशित हो सके। राजस्थानियो के शिक्षण में मातृभाषा राजस्थानी को कोई स्थान नही दिया गया। उत्कृष्ट राजस्थानी साहित्य का भी शिक्षण के क्षेत्र में सर्वथा वहिष्कार कर दिया गया। ऐसी अवस्था मे नव शिक्षित व्यक्तियो और शेष राजस्थानी जनता के बीच वडी खाई पड गई तथा अग्रेज शासको के लिये बाहरी अधिकारियो की सहायता से राजस्थानी जनता को दबाना सरल हो गया।

इतना होते हुए भी राजस्थानी जनता से सम्पर्क रखने वाले साहित्य-कार राजस्थानी भाषा मे बराबर लिखते रहे। इन साहित्यकारो को पूरी पूरी सफलता मिली। चारणो, कविरावो, मोतीसरो आदि ने तो राज-स्थानी भाषा में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करना परम्परागत परम कर्तव्य समझा है। इस प्रकार राजस्थानी भाषा का विकास मन्द गति से, किन्तु बराबर होता रहा है।

भारतीय स्वाधीनता और राजस्थान प्रान्त के एकीकरण का कार्य प्रारम्भ होने पर राजस्थान के साहित्यकारो में नव-जीवन का सचार हो

गया है । राजस्थानी भाषा के प्रति अब राजस्थानियो का प्रेम धीरे-धीरे बढता जा रहा है और इसमें कोई सन्देह नही कि प्रान्तीय और मातृभाषा राजस्थानी के महत्व के स्पष्टीकरणके साथ ही राजस्थानी भाषा का विकास भी तीव्रगति से होगा ।

आधुनिक राजस्थानी के कुछ नमूने इस प्रकार है—

आज घरे सासू कहै, हरख अचाणक काय ।
वहू दलेवा हूलमै, पूत मरेवा जाय ॥

इला न देणी आपरी हालरियाँ हुलराय ।
पूत सिखावे पालणे, मरण बड़ाई माय ॥

—महाकवि सूर्यमल (१८१६-१८६४ ई०)

रहँट फरै चल्यो फरै, पण फरवामें फेर ।
वो तो वाड़ हरयो, वो खूंतारो ढेर ॥

वाला बचे विरोध जी, करे फूकरया चाड़ ।
वाजू तो भाटो भलो, रूपने मेटे राड़ ॥

—महाराज चतुरसिंह (१८७७-१९३० ई०)

रग-रग गड़ गयो रोग, दाम भाररो देसमें ।
निहचे करण विरोग, एकौ साहित औषधि ॥

राजनीतिरा रोगसूं, पड़े विपद जद पूर ।
दूर करे दुख देसरो, मै साहित कै नूर ॥

—उदयराज उज्ज्वल (१८८६ ई०, वर्तमान)

रण कर-कर रज-रज रँगे रवि ढँके रज हूंत ।
रज जेती घर नहँ दिये, रज-रज व्हे रजपूत ॥

चाद उजाले एक पख, बीजे पख अँधियार ।
वल दुहु पक्ख उजालिया, चंदमुखी बलिहार ॥

—नाथूदान महियारिया (१८९२ ई०, वर्तमान)

राजस्थानी साहित्य में जको तेज पैली हो वो आज भी है, कठै ई गयो कोनी। राजस्थानरे आजरे कविमें भी वा ही प्रतिभा, वो ही देशप्रेम, वो ही आत्माभिमान, वो ही तेज और वा ही आग भरी है। गाँव-गाँवमें आज भी इसा कवि बैठा है। पण बे प्रकाशमें कोनी आवै। राजस्थानीरो ओ नवो साहित्य प्रकाशमें आसमीज के दिन ससार देखसी के राजस्थानी साहित्यरो तेज कोई भाव घट्यो कोनी

—ठा० रामसिंह (१९०३, वर्तमान),

पीथल ! के खिमता बादलरी,
जो रोकै सूर उगालीनै।
सिंघारी हाथल सह लेवै,
वा कूख मली कद स्यालीनै।
धरतीरो पाणी पिये, इसो—
चातकरी चूंच बणी कोनी,
कूकररी जूणा जिये, इसी—
हाथीरी बात सुणी कोनी।
आ हाथामें तरवार थका, कुण राड कैवै है राजपूती ?
म्यानारे बदलै बैरयारी छात्यामें रैवेली सूती !

—कन्हैयालाल सेठिया (वर्तमान)

सुण सखनाद गज चिंघाड्या,
हय हींस्या म्याना खिंची खग।
तड़पी विजली सी नभ-नभमें,
छेड्यो वका विकराल जग।
बण महाकाल भिड्या भैरव,
गरज्या आपसमें ठोक ताल।
भालासू खेंची खाल-खाल,
तीरासू वींध्या बाल-बाल।

लोही लुहाण चली कृपाण,
चमकीला छाया लाल-लाल ।

मद मत्त वीर धर उग्र रूप,
डाटी तरवारां अड़ ढाल ।

असवार पड्या खा-खा पछाड़,
ली भेंट भवानी रुण्डमाल ।

—मेघराज 'मुकुल' (वर्तमान)

राजस्थानी साहित्य में जको तेज पैली हो वो आज भी है, कठै ई गयो कोनी। राजस्थानरे आजरे कविमें भी बा ही प्रतिभा, वो ही देशप्रेम, वो ही आत्माभिमान, वो ही तेज और वा ही आग भरी है। गांव-गांवमें आज भी इसा कवि बैठा है। पण वे प्रकाशमें कोनी आवै। राजस्थानीरो ओ नवो साहित्य प्रकाशमें आयसी जके दिन समार देखसी के राजस्थानी साहित्यरो तेज कोई भाव घट्यो कोनी

—ठा० रामसिंह (१९०३, वर्तमान),

पीथल ! के खिमता बादलरी,
जो रोकै सूर उगालीनै।
सिंघारी हाथल सह लेवै,
वा कूख मली कद स्यालीनै।
धरतीरो पाणी पिये, इसी—
चातकरी चूंच बणी कोनी,
कूकररी जूणा जिये, इसी—
हाथीरी बात सुणी कोनी।
आ हाथामें तरवार थका, कुण रांड कैवै है राजपूतो ?
म्यानारे बदलै बैरयारी छात्यामें रैवैली सूती !

—कन्हैयालाल सेठिया (वर्तमान)

सुण संखनाद गज चिंघाड्या,
हय हींस्या म्याना खिंची खग।
तड़पी बिजली सी नस-नसमें,
छेड्यो वंका विकराल जग।
बण महाकाल भिड्या भैरव,
गरज्या आपसमें ठोक ताल।
भालामें खेंची खाल-खाल,

तीसरा अध्याय

राजस्थानी भाषा की विशेषताएं

प्रत्येक भाषा की मौलिक विशेषताएँ होती हैं, जिनके आधार पर उसका स्वतन्त्र अस्तित्व निर्भर रहता है। इन्ही विशेषताओ के आधार पर किसी भाषा का विस्तार-क्षेत्र निश्चित कर प्रान्त अर्थात् शासन-सम्बन्धी इकाई का निर्माण किया जाता है। साथ ही इन विशेषताओ से सम्बन्धित जनता के इतिहास, नृतत्त्व और विभिन्न जातियो से सम्पर्क आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यो पर प्रकाश पडता है। इसलिये ससार के समस्त उन्नत भागो मे सम्बन्धित भाषाओ की जाच-पडताल, अध्ययन और प्रकाशन के सपूर्ण साधन सुलभ रहते हैं।

सर जार्ज ग्रियर्सन, डा० एल० पी० तेस्सितोरी और श्रीसुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के प्रारभिक प्रयत्नो के पश्चात् राजस्थानी भाषा-सम्बन्धी सपूर्ण जाच-पडताल, अध्ययन और प्रकाशन की सम्बन्धित जनता की उन्नति के लिये अनिवार्य आवश्यकता है। राजकीय एव सार्वजनिक प्रयत्नो के अभाव में व्यक्तिगत प्रयत्न महत्त्वपूर्ण होता है, किन्तु इसके लिये सपूर्ण साधन जुटाना प्राय असभव होता है। इसलिये इसके परिणाम पूर्ण रूपेण सन्तोष-जनक नही हो सकते।

राजस्थानी भाषा पर राजस्थान की भौगोलिक विशेषताओ का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है। राजस्थान भारतवर्ष का सबसे अधिक विस्तृत और विभिन्न प्रकार की भूमि एव जलवायु वाला प्रान्त है। इसी एक प्रात में ऊचे पहाड, हरी-भरी घाटिया, सुविशाल झीलें, घने जगल, उपजाऊ मैदान और विस्तृत मरुस्थल हैं। राजस्थान में कहीं वर्षा नाम मात्र

की होती है और कही कुछ अधिक भी । इसी प्रकार राजस्थान के कुछ भाग ठडे है, तो कुछ भाग गरम भी है । राजस्थान के पहाडो, हरी-भरी घाटियो, घने जंगलो और उपजाऊ मैदानो से सम्बन्धित जनता को जीवन-निर्वाह के सामान्य साधन उपलब्ध होते रहे है । इसलिये यहा के निवासियो को जीवन-निर्वाह के लिये बाहर जाने की आवश्यकता नही हुई है । साथ ही बाहर के लोगो का इन पहाडी और जंगली भागो में प्रवेश करना कठिन रहा है । इसलिये इन भागो में भारतीय आदिनिवासियो के वशज बहुत अधिक सख्या में मिलते है, जिनकी मूल बोलिया राजस्थानी में अपनी विशेपताएँ छोड कर अब प्राय· लुप्त हो गई है ।

राजस्थान के कम उपज वाले भागो से सम्बन्धित निवासियो को आजीविका-निर्वाह और पशु-पालन के लिये दुष्काल पडने पर अथवा अन्य विशेप परिस्थितियो में समय-समय पर बाहर जाना पडा है । इसलिये राजस्थानी भापा-भापी लोग राजस्थान के बाहर भी बडी सख्या में मिलते है । राजस्थान के गूजरो ने पश्चिमी राजस्थान से दक्षिण में प्रवेश कर गुजरात जैसे प्रान्त की नींव रक्खी । इस प्रकार राजस्थानी भापा का मेल विविध प्रकार की जनता और जन-भापाओ से हुआ है ।

राजस्थान का बहुत प्राचीन काल से गुजरात, सिन्ध और पजाब से घनिष्ट सास्कृतिक सम्बन्ध रहा है । बाद में परिस्थितिवश दिल्ली और उत्तरप्रदेश से भी राजस्थान का राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हुआ । इसलिये दिल्ली और उत्तरप्रदेश से आने वाले शासक-वर्ग एव सम्बन्धित लोगो ने अपनी भापाओ एव बोलियो के द्वारा जन-भापा राजस्थानी को और राजस्थानी जनता को अपने दबाव में रख कर अपना शासन एव प्रभाव जमाने की बराबर चेप्टा की है ।

भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी द्वार से समय-समय पर आने वाली विभिन्न जातियाँ पजाब और सिन्ध की राह से आ कर राजस्थान में बसी है, तथा आगे बढी है । गूजरो का उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है ।

राजस्थानी भाषा की स्थिति पर उपरोक्त सभी बातो का प्रभाव स्वाभाविक रूप में पडा है। राजस्थानी भाषा की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार है–

(क) उच्चारण सम्बन्धी विशेषताएँ

१–मूर्धन्य 'ष' के स्थान पर 'ख' उच्चरित होता है और राजस्थानी 'ख' 'ष' के समान ही 'प' को सिरेबन्दी की समानान्तर रेखा से काटते हुए लिखा जाता है। उदाहरण के लिये वर्खा (वर्षा), पखाण (पाषाण), मनख (मनुष्य), औखद (औषध), पुरख (पुरुष), और खट (षट) आदि शब्दो को लिया जा सकता है।

२–'य' किसी शब्द का प्रथम अक्षर होता है तो 'य' का उच्चारण 'ज' की भाति होता है। जैसे – जोधा (योद्धा), जात्रा (यात्रा), जुगत (युक्ति), जुग (युग) और जम (यम) आदि।

३–'न' के स्थान पर प्राय 'ण' का उच्चारण। जैसे–चमकणा (चमकना), कण (कन), मण (मन), पाणी (पानी), जण (जन), दूण (दूना) और अजाण (अजान) आदि।

४–'ल' अर्थात् 'ल' का मूर्धन्य उच्चारण। यह प्राचीन ध्वनि राजस्थानी के अतिरिक्त गुजराती, पजाबी, मराठी, सिन्धी, लहन्दा आदि भाषाओ में भी मिलती है। राजस्थानी में 'ल' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग करने से शब्दार्थ मे अन्तर भी हो जाता है। जैसे–गाल=दुर्वचन और गाल=कपोल, भाल=खोज और भाल=ललाट, बाल=दया और बाल=बालक तथा गोल=गुड और गोल=वृत्ताकार आदि।

५–'व' का सस्कृत 'व' और अग्रेजी 'W' के उच्चारण के अतिरिक्त अग्रेजी 'V' का उच्चारण भी होता है। ऐसी अवस्था मे 'व' के नीचे बिन्दी लगा कर 'व' कर दिया जाता है। ऐसा नहीं करने पर शब्दार्थ में अन्तर हो जाता है। जैसे– वात=हवा और वात=वार्ता,

कहानी, वार=दिन ग्रौर वार=जोर की ग्रावाज तथा वीर=वहादुर ग्रौर वीर=वीरोन्माद ।

६–'च' ग्रौर 'छ' ग्रादि तालव्य ध्वनियो के 'स' में ढलते हुए उच्चारण के लिये 'च' ग्रौर 'छ' ग्रादि के नीचे विन्दी का प्रयोग उचित होता है । जैसे–वचार (विचार), छोरो (लडका) ग्रौर चारो (घास) ग्रादि ।

७–ग्र-कार के स्थान पर इ-कार का उच्चारण । जैसे – पिठाण (पठान) सिरदार (सरदार), पिडत (पण्डित), हिरण (हरिण) ग्रौर मिनख (मनुष्य) ग्रादि ।

८–इ-कार के स्थान पर ग्र-कार का उच्चारण । जैसे–दन (दिन), कनार (किनार), परणवो (परिणय), दल्ली (दिल्ली) ग्रादि ।

९–कही-कहीं उच्चारण में ग्रन्त की ध्वनि लुप्त हो जाती है । जैसे–वाँ (वाँह, वाहु), पाँ (पास), हा (सास) ग्रौर काँ (कहे) ग्रादि ।

१०–'च', 'स', 'ढ' ग्रौर 'भ' ग्रघोप वर्णो का विशेप उच्चारण, इनमें ह्-कार की विकृति । यह राजस्थानी के ग्रतिरिक्त लहँदा, पूर्वी पजावी, सिन्धी, गुजराती ग्रौर पूर्वी वगला में भी मिलती है, किन्तु खडी वोली, कौशली, विहारी, भोजपुरी, ग्रादि में नही मिलती । जैसे – व्हेण – भैण (वहिन), व्हारणे (वाहर), क्हो (कहो) ग्रादि ।

११–उच्चारण में वर्ण विशेप पर वल दिया जाता है । ऐसा नही करने पर शब्दार्थ में ग्रन्तर हो जाता है । जैसे–नार=स्त्री ग्रौर ना'र=सिंह, नाथ=स्वामी ग्रौर ना'थ=वधन, घर के वँटवारे के लिये खडी की गई दीवार, पीर=मुस्लिम धर्म-गुरु ग्रौर पी'र=पीहर ग्रादि ।

(ख) व्याकरण-सम्बन्धी विशेषताएँ

–कारक ग्रौर विभक्ति–

'ए' विभक्ति सभी कारको में पुल्लिग एक वचन के साथ लगती है । वहुवचन में वहुधा 'ग्राँ' या 'याँ' या 'हाँ' ग्रौर पुल्लिग एक वचन में 'ग्रा' लगता है । मुख्य विभक्तियाँ इस प्रकार है–

कारक	विभक्तिचिह्न	उदाहरण
कर्ता, प्रथमा ।	इ, उ आदि ।	राणइ, ढोलउ ।
कर्म, द्वितीया ।	इ, उ, इए आदि ।	भुयगि, कलेजउ, सखिए ।
करण, तृतीया ।	इ, ए, ती आदि ।	तनि, खगे, मुखती ।
सम्प्रदान, चतुर्थी ।	ए, नूं, आं आदि ।	घरे, मननूं, तनां ।
अपादान, पञ्चमी ।	हूँ, हुँता, अइ आदि ।	तनहूँ, मुखहुँता, हीयइ ।
सम्बन्ध, षष्ठी ।	हां, रो, तणो, हन्दो आदि ।	करहां, रणरो, जग तणो, घरहन्दो ।
अधिकरण, सप्तमी ।	इ, ए आदि ।	पगि, घरे ।

२–सर्वनाम–

राजस्थानी सर्वनाम शब्दो के रूप बहुधा अपभ्रंश का अनुसरण करते हैं।

(अ) हू (मैं) के कुछ रूप इस प्रकार हैं–

हूँ, म्हे, मइँ (कर्ता)।

हूँ, मूं, मूझ (कर्म)।

माहरो, अम्हीणो, म्हारउ आदि (सम्बन्ध)।

अम्हा (अधिकरण)।

(आ) तूं (तू) के कुछ रूप इस प्रकार हैं–

तुम्ह, तुम्हां (कर्ता)।

तुम्ह, तुम्हां (कर्म)।

तुम्हासूं, थांसू (करण)।

ताहरो, थारो, तुम्हीणो (अधिकरण)।

(इ) ओ (यह) के कुछ रूप इस प्रकार हैं–

एह, ए, इणां, यां (कर्ता)।

इण, इणानै, इणांनै, यांनै, आंनै (कर्म)।

एणइ, इणइ, इणि (करण)।

एहँ, इहँहू, अहां (सम्प्रदान)।

इणरा, ईरा, इणांरा, ऑरा, यांरा (सम्वन्व) ।

(ई) वो, सो (वह) के कुछ रूप इस प्रकार हैं–

उणां, वां, तिके, तिणां, सो (कर्ता) ।

उण, त्यां, ता, उवां, तांह, तिणांनै (कर्म) ।

तिणइ, तेहिं, तेइ (करण) ।

तउ, तिह, तिम्र (सम्प्रदान) ।

उणरो, वणारो, तिणरा, तांहका, तिणारा, वांरा (सम्वन्व) ।

(उ) जो, जिको (जो) के कुछ रूप इस प्रकार हैं–

जिको, जिका, जिकां, जु, जः (कर्ता) ।

जिण, जिणां, जां, ज्यां, जिणांने (कर्म) ।

जिणरा, जिणरो, जिणारो, ज्यांको, जांको (सम्वन्ध) ।

(ऊ) कुण (कौन) के कुछ रूप इस प्रकार हैं–

कुण, कउण, कवण, किणां (कर्ता) ।

किणनै, किण, कीनै, किणांनै (कर्म) ।

कउणईं, कुणइं, कुणि, किणि (करण) ।

कीरा, किणरा, किणांरा, कणरा (सम्वन्व) ।

(ए) 'आप' के कुछ रूप इस प्रकार हैं–

आप, आपां (कर्ता) ।

आपनै, आपानै (कर्म) ।

आपइं, आपणइं (करण) ।

आपरो, आपाणो (सम्वन्ध) ।

३–क्रिया–

(अ) वर्तमान काल बहुवा मूल क्रिया के पीछे 'हैं' विभक्ति लगा कर व्यक्त किया जाता है । 'हैं' के स्थान पर 'छै' का प्रयोग केवल 'जैपुरी' और 'हाडौती' में रह गया है । मूल क्रिया में 'इ' और 'ऐ' विभक्ति लगा कर भी वर्तमान काल व्यक्त किया जाता है । जैसे–भरइ, पलट्टइ, वसइ, रोकै, लोपै, भखै आदि ।

(आ) भूतकाल क्रिया के रूप सम्बन्धित सज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दो के अनुसार वहुधा एकवचन में ओकारान्त और वहुवचन में आकारान्त होते हैं। जैसे–भागो, भागियो (एक वचन), भागा, भागिया (वहुवचन) आदि। सामान्य भूतकाल के लिये मूल क्रिया के अन्त में 'इउ', 'यऊ' , और 'इउ' जोडे जाते हैं। जैसे–कहियउ, उडियउ, कहिउ, उडिउ, परणिउ आदि।

(इ) भविष्यत काल क्रिया के रूप अधिकाश में 'ला', 'ली', 'लौ' प्रत्यय लगा कर वनाये जाते हैं। जैसे–जावेला, जावेली, जावेलौ, खावेला, खावेली, खावेलौ आदि। कहीर 'स्याँ', 'मी', 'स्यूँ' और 'गा', 'गी', का प्रयोग भी होता है। जैसे–जास्यां, जासी, जास्यूं और जावूंगा, जावांगा, जावेगी आदि।

(ई) पूर्वकालिक क्रियाओ के अन्त में 'अ', 'र', 'एवि', 'नै' और 'ह' आदि प्रत्ययो का प्रयोग होता है। जैसे–जाणिअ, जाणर, जाणेवि, जाणनै, जाणेह आदि।

(उ) आज्ञार्थक क्रियाओ के अन्त में 'वै' और 'जै' का प्रयोग होता है। जैसे–फरमावै, दिरावै, फरमावजै, दिरावजै आदि।

४–विशेषण–

राजस्थानी विशेषण के लिंग, वचन और कारक विशेष्य के लिंग, वचन और कारक का ही अनुसरण करते हैं। पुल्लिग सूचक विशेषण वहुधा आकारान्त, ओकारान्त और स्त्रीलिग सूचक विशेषण वहुधा इकारान्त होते हैं। गुजराती के सख्या-वाचक शब्द भी राजस्थानी से मिलते हुए हैं। जैसे–वारा (वारह), तेरा (तेरह), पन्द्रा (पन्द्रह), सोला (सोलह), सतरा (सतरह) आदि।

(ग) शब्द-कोश-सम्वन्धी विशेषताएं

राजस्थानियो का सम्पर्क कई विभिन्न जातियो एव सस्कृतियो से रहा है। इसलिये राजस्थानी में सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश शब्दावली के अतिरिक्त

कुछ द्रविड, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, फ्रेञ्च आदि भाषाओ के शब्द भी तद्भव रूप में मिल गये है, किन्तु इनकी सख्या अन्य शब्दो की अपेक्षा बहुत कम है। राजस्थानी भाषा के कई शब्द मूलत. राजस्थान प्रान्तीय है, जिनके पर्याय अन्य भाषाओ में नहीं मिलते। यदि खडी बोली बोलने वाले किसी व्यक्ति से राजस्थानी भाषा-भाषी की तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि राजस्थानी शब्दावली में कई गुने अधिक सस्कृत शब्द है और मूल राजस्थानी शब्दावली के कारण उसकी मौलिकता स्पष्ट प्रमाणित होगी। राजस्थानी में पर्यायवाची शब्दो की भी भरमार है। शब्द-शक्ति की दृष्टि से भी राजस्थानी एक महान् भाषा है। कुछ राजस्थानी शब्दो के रूप इस प्रकार हैं–

१–प्राचीन भारतीय आर्य भाषा वर्ग (सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश) से सम्बन्धित कुछ शब्द इस प्रकार है– अपछर (स० अप्सरा), ओलवो (स० उपालम्भ), कुण (अप० कउण), केवाण (स० कृपाण), खिण (अप० खण, स० क्षण), दिणअर (स० दिनकर), पिसण (स० पिशुन), मछर (स० मत्सर), मुसाण (अप० मसाण, स० श्मशान), सगला (प्रा० सगल), सदेसडो (प्रा० सदेसडउ) आदि।

२–मुस्लिम वर्ग (अरबी, फारसी, और तुर्की) से सम्बन्धित कुछ शब्द इस प्रकार हैं– अरज्ज (अ० अर्ज), अजब (अ० अजीब), इनाम (अ०), काफर (अ० काफिर), कागल, कागद (अ० कागज), कुसामद (फा० खुशामद), गरकाब (अ०), गोलो (अ० गुलाम), तोप (तु०), पतसाह (फा० पादशाह), बगतर (फा० बख्तर), हूनर (फा०) आदि।

३–युरोपीय भाषाओ से सम्बन्धित कुछ शब्द – अजण (एजिन), कोरट (कोर्ट), टिगस (टिकिट), टेसण (स्टेशन), बक (बैंक), मनीया-डर (मनि आर्डर), सनीमो (सिनेमा) आदि।

४–प्रान्तीय वर्ग अर्थात् राजस्थानी भाषा के निजी शब्दो के कुछ रूप इस प्रकार हैं – आटी (चोटी, वेणी), गडक, गडकडो (कुत्ता), जीमणो (दाहिना), टाबर (बच्चा) ढोलो (पति) नाणो (रुपया) पगी

(कीर्ति), भाटो (पत्थर), मगरो (पहाड), लुगाई (स्त्री) और हेलो (पुकार) आदि।

(घ) लिपि सम्बन्धी विशेषताएं

नागरी लिपि राजस्थानी भाषा की अपनी मूल लिपि है। अपनी महत्ता और श्रेष्ठता के कारण इसका व्यवहार सस्कृत, मराठी, ब्रज, अवधी, खडी बोली आदि के लिये भी होता रहा है। अब नागरी लिपि को भारत की राष्ट्रीय लिपि के रूप मे मान्य किया गया है, इसलिये अन्य भाषाओ के लिये भी इसका प्रचार बढता जा रहा है।

'नागरी' की उत्पत्ति भारतवर्ष की प्राचीन लिपि 'ब्राह्मी' से हुई है। 'ब्राह्मी' के विभिन्न रूप ५०० ई० पू० से ३५० ई० तक प्राप्त होते है और इस समय की समस्त भारतीय लिपियो की सज्ञा 'ब्राह्मी' मानी गई है। ३५० ई० के पश्चात् 'ब्राह्मी' का प्रवाह उत्तरी और दक्षिणी, दो भागो मे विभक्त हो जाता है। दक्षिण भारत में ब्राह्मी के दक्षिणी रूपो का विकास हुआ और उत्तरी भारत में उत्तरी रूपो का। उत्तरी शैली में 'नागरी' मुख्य है, जिसका प्रचार आठवी शताब्दी से मिलता है।[१]

'नागरी' के नामकरण के विषयमें वहुत मतभेद रहा है। इसका सम्वन्ध नागरिक अथवा नगर, नागर ब्राह्मण और त्रिकोण एव चक्रो से वने हुए उपासना यत्र 'देव नगर' आदि से जोडा जाता है।[२]

मेवाड में उदयपुर के समीप प्राप्त होने वाले अपभ्रशकालीन सुसम्पन्न नगर नागदा (नागद्रहा) के खण्डहरो से, मारवाड के नागौर (अहिछत्रपुर) की प्राचीन महत्ता से, नाग और नागदा जाति के महत्त्व से और इसी प्रकार के अन्य ऐतिहासिक प्रमाणो से राजस्थान में 'नाग' जाति के

१—गौरीशकरजी हीराचदजी ओझा, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ० ४२।

२—वही, पृ० ३० और देवनागरी लिपि की उत्पत्ति विषयक आर शाम शास्त्री का निवन्ध, इंडियन एंटिक्वेटरी (Indian Antiquary) जि० ३५, पृ० २५३–६७, २७०–९० और ३११–२४।

प्रमुत्व का पता लगता है। राजस्थान से सम्बन्वित भाषा अपभ्रंश का नामकरण 'नागर अपभ्रंश' और लिपि का नामकरण 'नागरी' वास्तव में 'नाग' के आधार पर किया गया है। राजस्थान मे 'र', 'रा', 'री' आदि विभक्तियाँ 'का', 'की' आदि के सम्बन्ध-बोधक अर्थ में प्रयुक्त होती रही हैं। इस प्रकार नागर अपभ्रंश का अर्थ होता है– नाग लोगो की अपभ्रंश और 'नागरी लिपि' का अर्थ होता है 'नागर अपभ्रंश' की लिपि अथवा नाग लोगो की लिपि। स्पष्ट किया जा चुका है कि छठी सदी के आसपास विकसित राजस्थानीय लोक भाषा 'नागर अपभ्रंश' और इसकी एक मात्र उत्तराधिकारिणी 'राजस्थानी' का १६वी सदी तक भारतवर्ष में प्रभुत्व था। इस काल में नागर अपभ्रंश एव राजस्थानी में जितना अधिक लेखन-कार्य हुआ, वैसा किसी अन्य भाषा में नही हुआ। नागरी लिपि मे लिखित प्राचीनतम हस्तलिखित ग्रन्थ, शिलालेख, ताम्रपत्र आदि भी मुख्यत इन्ही भाषाओ में और इनसे सम्बन्धित क्षेत्र मे ही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार 'नागरी' लिपि को 'राजस्थानी' लिपि भी कह सकते हैं।

उत्तर मध्यकाल मे 'राजस्थानी' के अतिरिक्त अन्य भाषाओ में भी साहित्य-रचना होने लगी तो बगाली, गुजराती और पंजाबी आदि के लिये 'नागरी' लिपि से मिलते हुए और इसके आधार पर प्रचलित रूप बगाली, गुजराती, गुरुमुखी आदि अपनाए गये। शेष भाषाओ ने नागरी लिपि को ही अपना लिया, जिनमें मराठी, ब्रज, अवधी और उर्दू आदि है। 'उर्दू' को नागरी लिपि मे व्यक्त कर हिन्दी कहा जाने लगा है, जिसके विषय में आगे प्रकाश डाला जावेगा।

ब्रिटिश शासनकाल मे राजस्थान में प्रेसो और प्रकाशन सम्बन्धी कार्यो पर कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि राजस्थानी अर्थात् मूल नागरी लिपि का भली प्रकार से विकास और प्रकाशन नही हो सका। इसमे उर्दू के लिये अपनाई गई भ्रष्ट नागरी राजस्थान में प्रचलित होने लगी है। भ्रष्ट नागरी और मूल राजस्थानी नागरी में अन्तर है, जो

राजस्थानी लिखावट मे, मुख्यत 'ख', 'ग', 'ड', 'छ', 'झ', 'ल', तथा विभिन्न अको में स्पष्ट देखा जा सकता है ।

राजस्थानी भाषा के समुचित विकास के लिये अब उर्दू के लिये प्रचलित नागरी लिपि में उचित सुधार करना और उसको मुद्रण, अकण, शीघ्रलेखन आदि के लिये अपनाना बहुत आवश्यक हो गया है ।

(ड) साहित्य-सम्बन्धी विशेषताएँ

साहित्यिक दृष्टि से राजस्थानी भाषा की गणना भारतवर्ष मे दो तीन प्रमुख साहित्यसम्पन्न भाषाओ में की जानी चाहिये । क्योकि प्राचीन साहित्य की दृष्टि से राजस्थानी भाषा बहुत सम्पन्न है । ब्रिटिश शासनकाल की राजस्थानी जनता की दुहरी पराधीनता एव प्रकाशन सम्बन्धी कार्यों पर लगे हुए कडे प्रतिबन्धो के कारण राजस्थानी भाषा का नवीन साहित्य अपेक्षाकृत कम प्रकाश में आया है । किन्तु भारतीय स्वाधीनता एव राजस्थानी एकीकरण के उपरात उत्पन्न हुई नवीन जागृति को देखते हुए आशा है कि उक्त कमी शीघ्र ही पूरी हो जावेगी । राजस्थानी भाषा का साहित्य निम्नलिखित भागो में विभक्त किया जा सकता है–

१– जैन साहित्य –

राजस्थानी जैन साहित्य प्रबन्ध, कथा, रास, चौपाई, फाग, सम्वाद, गीत, धमाल, दूहा, गजल, स्तवन, सज्झाय, पट्टावली आदि के रूप मे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। प्राचीन राजस्थानी गद्य भी मुख्यत जैन साहित्यकारो द्वारा लिखा गया है । जैन साधु-साध्वियो और यतियो ने धार्मिक, वैद्यक, कोष, मत्र, नगर-वर्णन, इतिहास आदि से सम्बन्धित बहुत उपयोगी साहित्य की रचना और रक्षा कर जन भाषा राजस्थानी को सम्पन्न करने में योग दिया है । इन साहित्यकारो की रचनाओ मे शालिभद्रसूरि का भारत बाहुबली रास (स० ११८६), कुशललाभ की ढोला-मारू चौपई और माधवानल कामकन्दला (१६ वी सदी), समय सुन्दर (स० १५८०-१६४२) की सीताराम चौपई, जीतमलजी का भगवती सूत्र

श्रादि उल्लेखनीय है । श्राज भी अधिकाश जैन-साहित्यकार राजस्थानी भाषा को अपनाए हुए है ।

२–पिगल साहित्य –

पिंगल का अर्थ शूरसेनी अथवा ब्रज प्रभावित राजस्थानी मानना चाहिये । प्राचीन परपरागत विविध प्रकार के छन्दो में राजस्थानी वीरता का चित्रण इसकी प्रधान विशेषता है । राजस्थान के कविरावो (भट्टो) और कुछ सन्तो का झुकाव पिंगल की ओर रहा है । दलपत का खुमाण रासा, महाकवि चद का पृथ्वीराज रासा, नरहरिदास (स० १६४८-१७३३) का अवतार चरित्र, मान कवि का राजविलास (स०१७३८) और महाकवि सूरजमलजी (वि० स० १८७२-१६२०) का वशभास्कर आदि पिंगल की प्रमुख रचनाएँ है ।

३–डिगल साहित्य –

डिंगल राजस्थानी साहित्य की एक विशेष शैली है, जिसका आधार मुख्यत पश्चिमी राजस्थानी है । इस शैली को राजस्थान के समस्त विभागों के साहित्यकारो ने, जिनमें चारण मुख्य है, अपनाया है । डिंगल में कई प्रबन्धकाव्यो के अतिरिक्त लाखो दूहो और गीतो की रचना हुई हैं । राजस्थानी दूहे राजस्थानी समाज में प्राणो की तरह व्याप्त है और मौखिक रूप में भी प्राप्त किये जा सकते है । इन दूहों और गीतो की उच्चारण-शैली बडी प्रभावशाली होती है । यह अब लुप्त होती जा रही है । डिंगल कवियो में दुरसाजी आढ़ा (वि० स० १५६२-१७१२), ईसरदासजी (वि० स० १५६५-१६७६), महाराज पृथ्वीराज (वि० स० १६०६-१६५७), वाकीदासजी (वि० स० १८२८-१८६०), महाकवि सूरजमलजी (वि० स० १८७२-१६२०), केसरीसिंहजी बारहठ, कोटा, (वि० स० १६२६-१६६८), उदैराजजी ऊजल (वर्तमान्) और नाथूदानजी महियारिया (वर्तमान्) आदि विशेष उल्लेखनीय है । नवीन डिंगल सुबोध

४–पौराणिक साहित्य –

राजस्थानी साहित्यकारो ने राजस्थानी जनता के लिये पौराणिक साहित्य को भी राजस्थानी भाषा मे प्रस्तुत किया है। इस कार्य मे मुख्यत ब्राह्मणो का हाथ रहा है। रामायण और महाभारत से सम्बन्धित बहुत सी रचनाएँ राजस्थानी मे प्रस्तुत की गई है। साथ ही नासकेत पुराण, मार्कण्डेय पुराण, सूरज पुराण, पदम पुराण जैसे ग्रन्थ भी राजस्थानी मे प्रस्तुत किये गये है। इनमे अनुवाद, टीका आदि के लिये गद्य का प्रचुर मात्रा में व्यवहार हुआ है।

५–भक्ति साहित्य–

राजस्थान बहुत प्राचीन काल से विविध प्रकार के भक्तो और सम्प्रदायो का केन्द्र रहा है। नाथ, दादू, रामसनेही, निरञ्जनी आदि सम्प्रदायो की राजस्थान जन्मभूमि है। भक्तो द्वारा राजस्थानी भाषा मे रचित भजन, वाणी, दूहे आदि जनता मे बहुत लोकप्रिय हुए है और राजस्थान के बाहर भी इनका बहुत प्रचार हुआ है। भक्ति साहित्य मे मीराँ-पदावली का स्थान सर्वोपरि है और इस कारण मीराँ को अखिल भारतीय लोकप्रियता प्राप्त हुई है। दादू, रैदास, जसनाथ, आदि की रचनाएँ भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। महाराज चतुरसिंह (वि० स० १९३३-१९८६) की रचनाओ का सम्बन्धित जनता मे बहुत प्रचार और आदर है।

६–लोक साहित्य –

राजस्थान के विविध प्रकार के प्राकृतिक वातावरण और परिस्थितियो में निर्मित लोक गीतो, लोक वार्ताओ, कहावतो, मुहावरो, लोक कथाकाव्यो और ख्यालो के रूप मे मौखिक साहित्य भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होता है। इनके विधिवत् सकलन और प्रकाशन से राजस्थानी भाषा का भण्डार भरपूर हो सकता है। लोकगीतो मे विविध त्यौहारो, देवी देवताओ और मागलिक अवसरो के गीत मुख्य है। लोक वार्ताएँ भी विविधताओ से पूर्ण है और श्रोताओ को चमत्कृत करने में पूर्ण रूपेण समर्थ है। लोक कथा-

काव्यों में नरसीजीरो माहेरो, रुक्मणी मगल, डूँगजी-जवारजी, पाबूजी, तेजोजी, बगडावत, नागजी आदि मुख्य है। इनमें काव्यत्व के साथ राजस्थानी सस्कृति के सजीव दर्शन होते है। अमरसिंघ राठौड, गोपीचद भरथरी, राजा हरिचद आदि राजस्थानी ख्याल भी बहुत उत्साह से खेले जाते है।

७—नवीन साहित्य –

प्राचीन साहित्यिक परम्परा का पालन करने वाले चारणो, कविरावो और सन्तो के अतिरिक्त कई नव शिक्षित व्यक्ति राजस्थानी भाषा में साहित्य-रचना करने के लिये प्रयत्नशील रहे है। इन्होने गद्य और पद्य, दोनो का प्रयोग किया है। शिवचद भरतिया, रामकर्ण आसोपा, गुलावचद नागोरी, मुरलीधर व्यास आदि ने नवीन राजस्थानी गद्य का निर्माण किया है। नवीन राजस्थानी कविता में कन्हैयालाल सेठिया की विविध रचनाएँ, कु० चन्द्रसिंह के राजस्थानी प्रकृति चित्रण सम्बन्धी काव्य, मेघराज 'मुकुल' की सेनाणी, लौरी, और कोडमदे, नानूराम सस्कर्ता की कलायण और रैवतदान चारण की ओजस्वी रचनाएँ बहुत महत्वपूर्ण है। अभी २ राजस्थान के कई साहित्यकारो का ध्यान राजस्थानी भाषा में विविध उपयोगी साहित्य और अनुवाद आदि प्रस्तुत करने की ओर विशेष रूप में गया है। विश्वास है कि निकट भविष्य में ही इसका शुभ परिणाम हमारे सामने आवेगा।

—— ० ——

४–पौराणिक साहित्य –

राजस्थानी साहित्यकारो ने राजस्थानी जनता के लिये पौराणिक साहित्य को भी राजस्थानी भाषा मे प्रस्तुत किया है। इस कार्य मे मुख्यत ब्राह्मणो का हाथ रहा है। रामायण और महाभारत से सम्वन्धित वहुत सी रचनाएँ राजस्थानी मे प्रस्तुत की गई है। साथ ही नासकेत पुराण, मार्कण्डेय पुराण, सूरज पुराण, पदम पुराण जैसे ग्रन्थ भी राजस्थानी मे प्रस्तुत किये गये है। इनमे अनुवाद, टीका आदि के लिये गद्य का प्रचुर मात्रा मे व्यवहार हुआ है।

५–भक्ति साहित्य–

राजस्थान बहुत प्राचीन काल से विविध प्रकार के भक्तो और सम्प्रदायो का केन्द्र रहा है। नाथ, दादू, रामसनेही, निरञ्जनी आदि सम्प्रदायो की राजस्थान जन्मभूमि है। भक्तो द्वारा राजस्थानी भाषा मे रचित भजन, वाणी, दूहे आदि जनता मे बहुत लोकप्रिय हुए है और राजस्थान के बाहर भी इनका वहुत प्रचार हुआ है। भक्ति साहित्य मे मीरॉ-पदावली का स्थान सर्वोपरि है और इस कारण मीरॉ को अखिल भारतीय लोकप्रियता प्राप्त हुई है। दादू, रैदास, जसनाथ, आदि की रचनाएँ भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। महाराज चतुरसिंह (वि० स० १६३३-१६८६) की रचनाओ का सम्बन्धित जनता मे वहुत प्रचार और आदर है।

६–लोक साहित्य –

राजस्थान के विविध प्रकार के प्राकृतिक वातावरण और परिस्थितियो में निर्मित लोक गीतो, लोक वार्ताओ, कहावतो, मुहावरो, लोक कथाकाव्यो और ख्यालो के रूप मे मौखिक साहित्य भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होता है। इनके विधिवत् सकलन और प्रकाशन से राजस्थानी भाषा का भण्डार भरपूर हो सकता है। लोकगीतो मे विविध त्यौहारो, देवी देवताओ और मागलिक अवसरो के गीत मुख्य है। लोक वार्ताएँ भी विविधताओ से पूर्ण है और श्रोताओ को चमत्कृत करने मे पूर्ण रूपेण समर्थ है। लोक कथा-

काव्यो में नरसीजीरो माहेरो, रुक्मणी मगल, डूंगजी-जवारजी, पावूजी, तेजोजी, वगडावत, नागजी आदि मुख्य हैं। इनमें काव्यत्व के साथ राजस्थानी सस्कृति के सजीव दर्शन होते हैं। अमरसिंघ राठौड, गोपीचद भरथरी, राजा हरिचद आदि राजस्थानी ख्याल भी वहुत उत्साह से खेले जाते हैं।

७—नवीन साहित्य –

प्राचीन साहित्यिक परम्परा का पालन करने वाले चारणो, कविरावों और सन्तो के अतिरिक्त कई नव शिक्षित व्यक्ति राजस्थानी भाषा में साहित्य-रचना करने के लिये प्रयत्नशील रहे हैं। इन्होंने गद्य और पद्य, दोनो का प्रयोग किया है। शिवचद भरतिया, रामकर्ण आसोपा, गुलावचद नागोरी, मुरलीधर व्यास आदि ने नवीन राजस्थानी गद्य का निर्माण किया है। नवीन राजस्थानी कविता में कन्हैयालाल सेठिया की विविध रचनाएँ, कु० चन्द्रसिंह के राजस्थानी प्रकृति चित्रण सम्बन्धी काव्य, मेघराज 'मुकुल' की सेनाणी, लोरी, और कोडमदे, ज्ञानूराम सस्कर्ता की कलायण और रेंवतदान चारण की ओजस्वी रचनाएँ वहुत महत्वपूर्ण हैं। अभी २ राजस्थान के कई साहित्यकारो का ध्यान राजस्थानी भाषा में विविध उपयोगी साहित्य और अनुवाद आदि प्रस्तुत करने की ओर विशेष रूप में गया है। विश्वास है कि निकट भविष्य में ही इसका शुभ परिणाम हमारे सामने आवेगा।

—— ० ——

चौथा अध्याय

राजस्थानी ही क्यो ?

पिछले अध्यायो मे राजस्थानी भाषा के प्रारभिक परिचय, राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति और विकास तथा राजस्थानी भाषा की विशेषताओ पर यथा तथ्य निरूपण किया गया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि 'राजस्थानी' हमारे भारत की एक स्वतत्र एव सम्पन्न भाषा है। अब तक किसी भी अधिकारी विद्वान् और सम्बन्धित विषय का थोडा-बहुत ज्ञान रखने वाले व्यक्ति ने इसका विरोध नही किया है।

(क) विशेषज्ञो के वक्तव्य

राजस्थानी भाषा के सम्बन्ध मे निष्पक्ष और अधिकारी विद्वानो द्वारा दिये गये कुछ सुप्रमाणित वक्तव्य इस प्रकार है–

१–राजस्थानी स्वतन्त्र भाषा है–

राजस्थानी बोलिया अपने आप मिल कर एक ऐसा वर्ग बनाती है जो एक ओर पश्चिमी हिन्दी तथा दूसरी ओर गुजराती से भिन्न है। वे मिल कर 'स्वतत्र भाषा' मानी जाने की अधिकारिणी है। पश्चिमी हिन्दी से वे पजाबी से भी अधिक दूर है। किसी भी स्थिति मे वे पश्चिमी हिन्दी की बोलियो की भाति वर्गीकृत नही की जा सकती।[1]

–श्रीयुत् डॉ जार्ज ग्रियर्सन।

२–राजस्थानी का हिन्दी से मेल नहीं है–

राजस्थानी (मारवाडी-गुजराती) के उच्चारण की एक खास बात यह है, इस मामले मे मारवाडी-गुजराती का मेल पश्चिमी पजाबी से

१–भारतीय भाषाओ की जॉच पडताल (Linguistic Survey of India) खड–६, भाग–२, पृष्ठ–[illegible]।

है, कुछ-कुछ सिंधी से भी है, पर मध्य-देश की बोली (हिन्दी) से नही है।[१]

—श्रीयुत् डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या।

३—व्याकरण की दृष्टि से राजस्थानी—

सज्ञाओ के कारक रूपो में यह (राजस्थानी) गुजराती से बहुत मिलती है, पश्चिमी हिन्दी से नहीं। राजस्थानी की विभक्तियाँ अलग ही है। जहाँ कहीं समानता है, वहाँ गुजराती से अधिक है, पश्चिमी हिन्दी से कम[२]।

—श्रीयुत् डॉ० श्यामसुन्दरदास।

४—राजस्थानी राजभाषा भी होनी चाहिये—

हिन्दी राजस्थान की मातृभाषा नही है और न प्रधान भाषा ही है। राजस्थानी ही आज हमारे व्यक्तित्व को अपने वास्तविक रूप में व्यक्त कर सकती है। राजस्थानी हमारी प्रादेशिक तथा मातृभाषा है और इस नाते राजस्थानी हमारी राजभाषा भी होनी चाहिये[१]।

—श्रीयुत् पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजयजी।

(ख) पराधीनता का परिणाम ?

ब्रिटिश-पराधीनता के काल में राजस्थानी भाषा को बगाली, गुजराती और मराठी आदि अन्य भाषाओ की भाँति समुचित रूप में विकसित होने का अवसर नहीं प्राप्त हो सका, इसके कई कारण है।

यह भली प्रकार से स्पष्ट हो चुका है कि राजस्थानी वीरो ने भारतीय स्वाधीनता और उत्कर्ष के लिये राजस्थानी साहित्य, राजस्थानी सस्कृति एव इनको मूलाधार राजस्थानी भाषा से ही प्रेरणा प्राप्त कर अन्त तक विदेशी आक्रान्ताओ का सामना किया है। राजस्थान भारतीय शक्ति

१—राजस्थानी भाषा पर महाकवि सूर्यमल आसन भाषण, पृ० ४८।

का स्रोत रहा है और राजस्थानी भाषा एव सस्कृति की अवहेलना कर राजस्थान ही नही वरन् समस्त भारतीय शक्ति को क्षीण किया गया है। अग्रेज शासको ने राजस्थानी वीरो की शक्ति को भली प्रकार से परख लिया था। उन्होने समझ लिया था कि वीर राजस्थानियो पर शासन करना और इनसे बच कर भारतीय वसुन्धरा का भोग करना अत्यन्त कठिन है। इसलिये राजस्थान के साथ अग्रेज-शासको ने विशेष नीति का अनुसरण किया।

अग्रेज शासक चाहते तो राजस्थान को भी बगाल, बिहार, गुजरात और पजाब की भाँति सयुक्त कर सीधा ही अपने शासन में ले सकते थे। किन्तु वे राजस्थानी जनता की अद्वितीय देश-भक्ति और अदम्य वीरता के कारण ऐसा करने का साहस नही कर सके। अग्रेज शासको ने राजस्थानी राजाओ को शक्तिहीन कर अपनी अधीनता में ले लिया और यहाँ की जनता को दबाये रखने का कार्य इन्ही राजाओ को सौंप दिया। राजस्थानी जनता की शक्ति पर इन राजाओ की सहायता से काबू पाने के लिये अग्रेज शासको ने राजस्थान के रजवाडी घेरो को सुदृढ कर दिया। जैसा कि दूसरे अध्याय में सूचित किया गया है, अग्रज-शासको के लिये बाहरी अफसरो और नौकर वर्गो द्वारा राजस्थानियो की वीरता के मूल स्रोत राजस्थानी भाषा को कुचलना अब बहुत सरल हो गया।

राजस्थान में प्रेस, प्रकाशन, लेखन और भाषण सम्बन्धी स्वतन्त्रता का आमूल अपहरण कर लिया गया। इससे राजस्थानी जनता अपने विचार समुचित रूप मे नही व्यक्त कर सकी और अपने दुख-दर्दो के निवारण में सर्वथा असमर्थ रही। राजस्थानी जनता राजस्थानी साहित्य के लाभ मे वचित हो कर भटकने लगी। विज्ञान के युग मे भी राजस्थानी वीरता का साहित्य, जिसमे भारतीय स्वाधीनता के अकुर पल्लवित हो चुके थे, कुम्हलाने लगा और न केवल राजस्थान की जनता इसके लाभ से वचित रही, वरन् अन्य लोगो को भी इसका समुचित परिचय नही मिल सका।

अंग्रेज शासकों ने राजस्थानियों के शिक्षण में राजस्थानी भाषा और साहित्य को सर्वथा बहिष्कृत कर दिया। राजस्थानियों के लिये विशेष प्रकार की पाठ्य-पुस्तकों, बाहरी परीक्षाओं, शिक्षकों और शिक्षा-सचालकों की व्यवस्था की गई। इस प्रकार मातृभाषा राजस्थानी की अवज्ञा से राजस्थानियों को शिक्षण-क्षेत्र में पीछे रह जाना पड़ा, साथ ही राजस्थानी भाषा का समुचित रूप में विकास भी नहीं हो सका।

(ग) जीवन-मरण का प्रश्न ?

सुप्रसिद्ध 'राजस्थानी इतिहास' को आज एक कहानी मात्र रह गई है, सुसम्पन्न 'राजस्थानी साहित्य' आज के वैज्ञानिक एव स्वतन्त्रता के युग में भी पुरानी पोथियों के रूप में सड़ता हुआ या मौखिक रूप में नष्ट होता जा रहा है, उत्कृष्ट भारतीय भावनाओं की प्रतीक 'राजस्थानी संस्कृति' आज पिछड़ी हुई बताई जाती है, सम्बन्धित क्षेत्र में सम्मान्य 'राजस्थानी कला' आज अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रही है और यह सब हो रहा है – भारतीय आर्य भाषाओं में अपना प्रमुख स्थान रखने वाली 'राजस्थानी' को राजकीय एव शैक्षिक क्षेत्रों से सर्वथा उपेक्षित कर देने से !

सभी शिक्षा-शास्त्रियों और विद्वानों ने शिक्षण के लिये 'मातृभाषा' के महत्त्व को पूर्णरूपेण स्वीकार किया है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति करने के लिये मातृभाषा का मूलाधार सर्वथा अपेक्षित है। मातृभाषा की सहायता से कई भारतीय प्रान्त आज उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे हैं, किन्तु राजस्थान की शिक्षा-के क्षेत्र में जैसी पिछड़ी हुई स्थिति वर्षों पूर्व थी, आज भी उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ है।[1]

"जब मिडिल पास हिन्दी जानने वालों के लिये भी हम नहीं कह सकते कि उनका साहित्य में प्रवेश हो गया है, और आगे उनकी रुचि स्वय उन्हें आगे खींच ले जायेगी, तो ठोक-पीट कर हिन्दी की दो-एक पुस्तकें

१—राजस्थान में अभी तक साक्षरता केवल ८.५ है और निरक्षरता है—९१.५ ।

पढा देने मात्र से कैसे आशा कर सकते है कि हमारे बहुत से हिन्दी मिडलचियो की तरह ये वयस्क नव-साक्षर भी कुछ समय बाद निरक्षर-से नही हो जावेगे। हमें शिक्षा-प्रचार का ढोल बजाने का प्रयत्न छोड कर वस्तुस्थिति को देखना चाहिये और जिसमे जल्दी, से जल्दी अधिक से अधिक सख्या में शिक्षा ठोस रूप से फैल कर अपने लिये घर बनाये, ऐसे रास्तो को पकडना है। इसके लिये सबसे पहिले इस बात की आवश्यकता है कि हर एक बच्चे या वयस्क को उसकी अपनी मातृभाषा द्वारा साक्षर या शिक्षित बनाया जाय।"

महा पण्डित श्रद्धेय राहुल साकृत्यायन ने हाल ही मे राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर को दिये गये अपने कुलपति-सन्देश मे उक्त विचार प्रकट किये है। इसी से मिलते हुए विचार अन्य प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियो और विद्वानो के है। किन्तु हमारे राजस्थान, मध्यभारत-मालवा और अजमेर आदि की सरकारें तथा शिक्षण-सस्थाएँ अभी तक घानी के बैलो की तरह, ब्रिटिश-पराधीनता काल मे लार्ड मेकाले द्वारा निश्चित घेरे मे ही चक्कर काट रही है। इनको न तो मातृभाषा राजस्थानी के महत्त्व का ज्ञान है और न इनमे प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाने का प्रयत्न ही दिखाई देता है।

भारतीय स्वाधीनता के पश्चात् यह कैसे सहन किया जा सकता है कि हमारे बालक और प्रौढ पर्याप्त परिश्रम करने पर भी यथोचित ज्ञान नही प्राप्त कर सके तथा जनता की कमाई का करोडो रूपया प्रति वर्ष बर्बाद हो जावे।

कुछ वर्ष पूर्व मेवाड के सुप्रसिद्ध सन्त एव साहित्यकार महाराज चतुरसिहजी, ठि० करजाली ने राजस्थानी को शिक्षा-माध्यम के रूपमे अपनाने के लिये इस प्रकार लिखा था –

"आजकाल आपणे अठे भणावारी असी रीत है के पेली हीज बालकाने पराई बोली भणावणो शरु करे। अणीसू बालकाने घणी अबकाई पडे। सूडारी नाई पड लेवे, पण समझमे नी आवासू भण-भणने भूलता जावे।

ई सु वालक घवराय जावे, उमग दव जावे ने आपने नजोगा समझवारो हमेशारे वास्ते स्वभाव पड जावे। सारा ही देश वाला पें'ली पराई वोलीमे भणावणो खोटे केवे है ने रजवाड़ा सिवाय कठेई पें'ली पराई वोली भणावै पण नी है। यो ही कारण है के रजवाडामें जठे-जठे मदरसा है, वठे-वठे पण भण्या थका मनख नी लाधे है [१]।"

इस प्रकार यदि हम राजस्थानी भाषा-भाषी जनता को शिक्षा के क्षेत्र में उन्नत करना चाहते है, शिक्षा पर खर्च होने वाली रकम और शक्ति का पूरा लाभ प्राप्त करना चाहते है, कोमलमति वालक-वालिकाओ एव प्रौढो को माध्यम-सम्वन्धी कठिनाइयो को दूर करना चाहते है, जनता की अभिव्यजना शक्ति को वनाये रख कर प्रान्तीय उत्कृष्ट साहित्य और सस्कृति का समुचित लाभ प्राप्त करना चाहते है तथा सरकार एव शिक्षितो और जनता के वीच पूर्ण सहयोग एव समन्वय स्थापित करना चाहते है तो कम से कम माध्यमिक और प्रौढ-शिक्षण में और जहाँ तक सभव हो राजकीय कार्यो तथा सार्वजनिक सम्पर्क के लिये 'मातृभाषा राजस्थानी' को अपनाना ही पडेगा।

जनता की अपनी मातृभाषा की स्वतन्त्रता और मान्यता के विना जनता की स्वतन्त्रता और मान्यता असभव है। राजस्थान की जनता के अपने घर में अपने राज के लिये 'राजस्थानी भाषा का राज' होना चाहिये। राजस्थानी भाषा की मान्यता के विना राजस्थानियो के आर्थिक तथा सामाजिक और राजनैतिक विकास के मार्ग सर्वथा अवरुद्ध है, क्योकि

१—आजकल हमारे यहाँ पढाने की ऐसी रीति है कि प्रथम ही वालकों को दूसरों की (वाहर की) वोली पढ़ाना आरम्भ करते हैं। इससे वालको को वहुत कठिनाई पड़ती है। तोते की तरह पढ लेते हैं, किन्तु समझ में नहीं आने से पढ़-पढ़ कर भूलते जाते हैं। इससे वालक घवरा जाते है, उमग दव जाती है और अपने आपको ही न समझने का हमेशा के लिये स्वभाव पड़ जाता है। सारे ही देश वाले प्रारम्भ में दूसरो की वोली में पढ़ने को वुरा कहते है और रजवाड़ो के सिवाय कहीं पहिले अन्य वोली पढाते भी नहीं है। यही कारण है कि रजवाड़ों में जहाँ जहाँ पाठशालाएँ हैं वहाँ वहाँ भी पढ़े हुए व्यक्ति नहीं मिलते हैं—"वालकारी पोथी"।

इसके विना राजस्थान मे शिक्षा एव अन्य प्रगति के माधन सार्वजनिक नही हो सकते । राजस्थानी भाषा की अमान्यता से आज राजस्थानियो को अपने घर में ही अपनी रोटी-रोजी के अधिकार से वचित रहना पडता है, साथ ही राजस्थानियो को अपने अभाव-अभियोग प्रकट करने और उनके निराकरण करने मे भी असमर्थ रहना पडता है । ऐमी अवस्था मे राजस्थानी भाषा की मान्यता का प्रश्न दो करोड भारतीय जनता के जीवन-मरण का प्रश्न वन गया है ।

——०——

पांचवां अध्याय

विरोधियो की दलीले

भारतीय स्वाधीनता के साथ तुरन्त ही जन-भाषा राजस्थानी को सम्बन्धित क्षेत्रो में मान्यता प्राप्त हो जाती, किन्तु कुछ भ्रान्तियो और स्थिरस्वार्थियो की जन-विरोधी प्रवृत्तियो के कारण ऐसा नही हो सका। प्रान्त-विरोधियो के कुचक्रो से भारतीय सविधान भाग १७, अनुच्छेद ३४४ एव अष्टम अनुसूचि के अन्तर्गत भी प्रान्तीय भाषा राजस्थानी को मान्यता नही दी गई। इन कारणो से राजस्थानी आन्दोलन को नये रूप में प्रारम्भ करना आवश्यक हुआ है।

(क) स्टैंडर्ड राजस्थानी

अग्रेज शासको ने अपनी शिक्षा-नीति द्वारा राजस्थानी विभागो में राग-द्वेष बढा कर राजस्थान की एकता को नष्ट करने का और नव शिक्षित व्यक्तियो को शेष जनता से अलग कर अपना साधन बनाने का प्रयत्न किया था। किन्तु राजस्थानी जनता अपनी एकता को बनाये रही। राजस्थानी जनता ने रजवाडी दीवारो की विशेष चिन्ता नही की और आपसी सामाजिक एव सास्कृतिक सम्बन्ध बराबर बनाए रक्खे। राजनैतिक दृष्टि से मालवा राजस्थान से अलग कर दिया गया था, किन्तु दोनो क्षेत्रो की जनता अपने को एक मानती हुई सामाजिक-सास्कृतिक व्यवहारो से बँधी रही है। अग्रेज शासको ने मेवाड, मारवाड, हाडौती, मालवा, ढूंढाड और अजमेर-मेरवाडा आदि विभिन्न राजस्थानी भागो को अलग रखने का पूरा प्रयत्न किया। किन्तु इन भागो मे भाषा, खान-पान, पहनाव और विचार-परम्परा की एकता बराबर बनी रही है, जिनके

आधार पर भारतीय स्वाधीनता के उपरान्त राजस्थान के एकीकरण का कार्य प्रारम्भ हुआ है।

अंग्रेजी शिक्षा का कुप्रभाव कुछ लोगो के मस्तिष्क मे कार्य कर रहा है और वे अब भी राजस्थान की एकता को मानने के लिये तैयार नही है। ऐसे लोग उन स्वार्थियो के पजे मजबूत बनाए हुए है, जिनके स्वार्थ राजस्थान के टुकडे-टुकडे में बँटे हुए रहने से पूरे होते रहे है। "बारा कोसा बोली बदले" का सिद्धान्त सभी भाषाओ पर लागू होता है, उसी प्रकार राजस्थानी पर भी। राजस्थानी भाषा में मारवाडी, मेवाडी, मालवी, वागडी, ढूंढाडी और हाडौती आदि बोलिया है, किन्तु ये एक दूसरी से इतनी भिन्न नही है कि आपस में समझी न जा सके। जिस प्रकार राजस्थान के विभिन्न भागो में खान-पान, आचार-व्यवहार, वेष-भूषा और विचार-परम्परा में एकता है, उसी प्रकार राजस्थानी बोलियो में भी एकता है। इसी एकता के आधार पर राजस्थान के एकीकरण का कार्य प्रारभ किया गया है। राजस्थान को पुन छिन्न-भिन्न कर स्थिरता पूर्वक अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले व्यक्ति ही राजस्थानी बोलियो में अनेकता की बात करते है।

जहाँ तक राजस्थानी भाषा के स्वरूप-निर्माण का प्रश्न है, वह तो अधिकाश में हल हो चुका है। अन्य भाषाओ से भिन्नता रखने, विस्तार-क्षेत्र, प्राचीन परपरा, निर्मित साहित्य एव सम्बन्धित जन-सख्या की दृष्टि से 'है' और 'छै' में से 'है', 'जाऊँला', 'जाऊँगा' और 'जास्यूँ' से सबंधित 'ला', 'गा' और 'स्यूँ' मे 'ला' से सम्बन्धित रूपो को तथा 'री' और 'की' विभक्तियो में 'री' से सम्बन्धित प्रयोगो को राजस्थान के सभी भागो के साहित्यकारो द्वारा मान्य किया जा चुका है।[1] इसी 'स्टेण्डर्ड' रूप मे

१—इन प्रयोगों की भिन्नता के अतिरिक्त राजस्थानी बोलियो में प्रयुक्त एक ही अर्थ को प्रकट करने वाले शब्दो की भिन्नता रहती है। पर्यायवाची शब्दो की अधिकता वास्तव में किसी भाषा की सम्पन्नता की द्योतक है और इनका प्रयोग इच्छानुसार किया जा सकता है।

अधिकाश राजस्थानी साहित्यकारो ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर राजस्थानी एकता को प्रतिष्ठित किया है और इसके उत्कर्ष को सम्वधित किया है। जैसा कि प्रारम्भ में बताया गया है कि राजस्थान की अपनी विचार परम्परा, साहित्य-शक्ति और सास्कृतिक सम्पन्नता है, इस दृष्टि से बगाल, उत्कल और महाराष्ट्र आदि की भाँति राजस्थान भी एक भारतीय इकाई में बद्ध है। वास्तव में बगाल, उत्कल और महाराष्ट्र आदि प्रान्तो की भाषावैज्ञानिक स्थिति से राजस्थान की मूल स्थिति भिन्न नहीं है। राजस्थान की स्थिति में इस दृष्टि से कोई अन्तर करना राजस्थान के साथ सर्वथा अन्याय करना है।

(ख) राष्ट्रभाषा की स्थिति

जहाँ तक हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने का प्रश्न है, राजस्थान ने अपनी राष्ट्रीय भक्ति के कारण इस पर वैधानिक छाप लगने के पूर्व ही स्वीकार कर लिया है। जिस प्रकार गुजरात, बगाल और महाराष्ट्र आदि में राष्ट्रभाषा को स्वीकार किया गया है, राजस्थान मे भी किसी को आपत्ति नही होनी चाहिये।

हमारी राष्ट्रभाषा का स्वरूप विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। राष्ट्रभाषा में न केवल बगाली, पजाबी, राजस्थानी, सिंधी आदि उत्तर-भारतीय भाषाओ को शक्ति सम्मिलित हो रही है वरन् तामिल, तेलगू, कन्नड और मलयालम् आदि दक्षिण भारत की द्रविड भाषाओ की शक्ति भी मिलने जा रही है। सभी भारतीय भाषाओ की शब्द-शक्ति से, सभी भारतीय भाषाओ की साहित्यिक सम्पन्नता से, सभी भारतीय भाषा-भाषियो की विचार-परम्परा और मान्यता की शक्ति से हमारे अखिल हिन्द की राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' सम्पन्न होने वाली है। 'खडी बोली' के 'हिन्दीकरण' का कार्य कुछ वर्ष पूर्व प्रारभ हुआ था, वह अब तीव्र गति से बढने वाला है।

ऐसी अवस्था मे राष्ट्रभाषा से हम राजस्थान की प्रान्तीय और मातृभाषा का कार्य किस प्रकार चला सकेगे ? यह विचारणीय प्रश्न है ।

खडी बोली, जिसका प्रयोग राजस्थान मे 'फारसी'[1] छाटणो' कहा जाता है, गुजरात, बगाल, महाराष्ट्र आदि प्रान्तो की तरह राजस्थान मे, मुख्यत शहरो के शिक्षित व्यक्तियो मे समझी अवश्य जाती है । किन्तु जनता के सर्वांगीण विकास के लिये शिक्षण एव प्रान्तीय कार्यो मे प्रयुक्त होने वाली भाषा का साधारणतया समझा जाना ही पर्याप्त नही है । वर्तमान काल मे हमारी जनता केवल सुनना ही नही चाहती, अपनी बात कहना भी चाहती है । इस प्रकार प्रान्तीय और मातृभाषा का स्थान कोई भी दूसरी भाषा नही ले सकती । जहाँ तक शहरो के कुछ मैकाले-पद्धति से शिक्षित व्यक्तियो और उनके सकीर्ण दायरे का प्रश्न है, उनका कार्य तो हिन्दी ही क्यो, अग्रेजी से भी चल सकता है, जैसा कि अधिकाश मे चलता भी है ।

कुछ लोग हिन्दी के नाम पर स्वार्थपूर्ति की दृष्टि से एक मोर्चा खडा करना चाहते है, हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के उपरान्त भी राजस्थानी जनता की उन्नति की उपेक्षा करते हुए राजस्थान को अपने साथ घसीटना चाहते है । स्पष्ट है कि राजस्थान भाग है तो सारे भारतवर्ष का, किसी प्रान्त विशेष का नही । इसलिये प्रान्त विशेष के स्वार्थियो से मिल कर शेष भारत से मोर्चा लेना राजस्थान की प्रवृत्ति में कदापि नही हो सकता ।

सैकडो वर्षो के मुसलमानी शासन के प्रभाव से उर्दू भारत की अन्त-प्रान्तीय भाषा स्वाभाविक रूप से बन गई थी । अग्रेजी शासन-काल में उर्दू को नागरी लिपि मे भी प्रकाशित किया गया तो कुछ लोगो ने इसी को हिन्दी के रूप मे प्रचारित करना प्रारभ किया । यह अग्रेज शासको की कूटनीति का ही परिणाम हुआ कि कुछ हिन्दु अपनी धार्मिक भाषा सस्कृत और अपनी मातृभाषाओ का ध्यान छोड नागरी में लिखित उर्दू

१—राजस्थान में 'पढ़ेली' को भी 'फारसी' कहते हैं

के लिये भी लडने लगे। स्वार्थी तत्त्वो ने जनता पर हावी होने के लिये 'हिन्दी-हिन्दु-हिन्दुस्तान' का नारा बुलन्द किया और हिन्दी के बहाने जनता को धोखे में डालना प्रारभ किया, जिसका दु खद परिणाम भीषण साम्प्रदायिक सघर्ष हमारे सामने उपस्थित हुआ। यह वर्ग आज भी क्रियाशील है और राष्ट्र-हित में इसका अन्त किया ही जाना चाहिये। उर्दू जवान को नागरी लिपि में लिखने से और उसमें थोडे-बहुत सस्कृत शब्दो को डालने से ही किसी को 'हिन्दी' नही माना जा सकता। यदि यही हिन्दी होती तो हमारे मीराँ, सूर, तुलसी, विद्यापति, नरसी आदि कवि भी अन्य मुसलमान विदेशी कवियो के साथ इसी रूप को अपनाते। किन्तु स्पष्ट है कि इस रूप को हिन्दी तब किसी ने नहीं माना। उत्तर-प्रदेश मे मुसलमान शासकों का एव उनकी भाषा 'उर्दू' का सर्वाधिक प्रभाव रहा है, इसलिये नागरीमें लिखित 'उर्दू' को हिन्दी मानने का आग्रह भी मुख्यत वही रहा है।

हमारी पराधीनता की प्रतीक होते हुए भी हमने नागरी में लिखित उर्दू को सस्कृत शब्दो से युक्त कर इसीलिये राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है कि भारत में मुसलमानो के सुदीर्घ शासन-प्रभाव के कारण इसका अन्तर्प्रान्तीय प्रचलन हो गया है। इस उर्दू को अब राष्ट्रभाषाक्षेत्र से भी आगे बढा कर राजस्थान में विगत एक हजार वर्षों की सुपरम्पराओ को तोडना तथा राजस्थानी भाषा-भाषी जनता को अपनी प्रान्तीय और मातृभाषा के लाभ से वचित करना कहा तक उचित कहा जा सकता है ? फिर नवीन क्रान्ति और नवीन जागृति के उष काल में प्रबुद्ध होते हुए इतिहास प्रसिद्ध राजस्थानी जन-बल का सामना करते हुए क्या कभी ऐसा स्थाई रूप में किया जा सकेगा ?

(ग) राजस्थान-मालवा की साहित्यिक भाषा

विगत एक हजार वर्षों के साहित्यिक इतिहास से स्पष्ट है कि राज-

जनता तक पहुँचाया है। खडीबोली का प्रयोग यहा केवल मुसलमान पात्रो के लिये हुआ है। कुतबदीन साहजादैरी वात, दिल्लीरी वात आदि राजस्थानी प्रभावित खडीबोली साहित्य से स्पष्ट हो जाता है कि खडी बोली मुसलमानो से सम्बन्धित है। राजस्थानी-मालवी जनता आज भी खडीबोली को मुसलमानो से सम्बन्धित मानती है, इसलिये खडीबोली के व्यवहार को 'फारसी छाटणो' कहा जाता है। राजस्थानी जनतामे खडीबोली का व्यवहार भी बहुधा मुसलमानो अथवा बाहरी लोगो द्वारा होता है।

यही कारण है कि नव शिक्षित साहित्यकार भी जनता से अपना सम्पर्क स्थापित करने के लिये और अपनी अभिव्यक्ति के लिये मुख्यत राजस्थानी भाषा का व्यवहार करते है। राजस्थानी भाषा के साहित्य-कारो को अत्यधिक लोकप्रियता भी प्राप्त हुई है। साथ ही नवीन राज-स्थानी की कई रचनाएँ परम उत्कृष्ट एव भारतीय साहित्य के लिये अपूर्व देन सिद्ध हुई है।

राजस्थान–मालवा के विभिन्न राजनैतिक नेताओ द्वारा भी जन-सम्पर्क के लिये राजस्थानी भाषा को ही अपनाया गया है। विविध राष्ट्रीय आन्दोलनो मे भी राजस्थानी साहित्यकारो और उनकी रचनाओ से पूरा सहयोग प्राप्त हुआ है। यहाँ का सम्पूर्ण 'लोक साहित्य' जो जनता का वास्तविक साहित्य है, राजस्थानी भाषा मे ही मिलता है।

गुजरात, बगाल, महाराष्ट्र आदि प्रान्तो की भांति राजस्थान-मालवा से भी कुछ खडीबोली की पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें प्रकाशित होती रहती है, किन्तु इनकी पहुँच बहुत ही सीमित रहती है।

इस प्रकार राजस्थान-मालवा मे साहित्यिक दृष्टि से 'जन-भाषा' राजस्थानी ही सम्मान्य हुई है।

(घ) अखिल भारतीय स्थिति

प्रवासी राजस्थानियो के साथ राजस्थानी भाषा भारत के कोने-कोने में पहुँची हुई है। जनसख्या की दृष्टि मे राजस्थानी का स्थान ससार मे

२७वाँ और भारत में ७वाँ है । राजनैतिक दृष्टि मे और अपनी अखिल भारतीय महत्ता के कारण राजस्थानी भारत की तीन-चार प्रमुख भाषाओ में मानी गई है । जैसे –

अगर-मगर के सोलह आने, इकडम-तिकडम बार ।
अट्ठ-कट्ठ के अठ हीज आने, सूं-सां पइसा चार ॥

अर्थात् मुगल-शासन-काल के अन्तिम दिनो में जब मराठो का जोर बहुत बढ गया था तो 'अगर-मगर' की शाही भाषा उर्दू को सोलह आना, 'इकडम-तिकडम' की मराठी को बारह आना, 'अट्ठ-कट्ठ' की राजस्थानी को आठ आना और 'सु-सा' की गुजराती को केवल चार पैसे स्थान मिला था ।

कालान्तर में जब अंग्रेजो का प्रभुत्व बढ गया तो भारतीय भाषा-विषयक स्थिति इस प्रकार हो गई –

'हियर-देयर' सोलह आना, इधर-उधर बार ।
इकडे-तिकड़े आठ आंना, अठे-बठे चार ॥

अर्थात् 'हियर-देअर' की अंग्रेजी को सोलह आना, इधर-उधर की उर्दू (जो अब मुगल-साम्राज्य के पतन के कारण दब गई थी), को बारह आना, 'इकडे-तिकडे' की मराठी को आठ आना और 'अठे-बठे' की राजस्थानी को चार आना स्थान प्राप्त हुआ[१] ।

अब भारत से अंग्रेजो का आधिपत्य उठ जाने से 'हियर-देअर' की अंग्रेजी के लिये सोलह आने नही रहे । 'अगर-मगर' की इस्लामी भाषा और 'इकडे-तिकडे' की मराठी का अखिल भारतीय क्षेत्र भी मुसलमान और मराठा शासको के साम्राज्य-स्वप्नो के साथ समाप्त हो गया है ।

१—इन पद्यो की भाषा शैली और अर्थ से स्पष्ट है कि ये पद्य अखिल भारतीय भाषा विषयक स्थिति को प्रकट करते है । राजस्थान में तो कभी इन पद्यों का प्रचार भी नहीं रहा है । श्रीचन्द्रबली पाडे ने अपनी अजानकारी से उक्त प्रथम पद्य को केवल राजस्थान में ही प्रचलित मान कर 'राजस्थानी के लिये बहुत निम्नश्रेणी के और

अब प्रत्येक राजस्थानी का एव प्रत्येक स्वाधीनता-प्रेमी भारतीय का परम कर्तव्य हो जाता है कि भारतीय स्वाधीनता-सग्राम की मूल प्रेरक जन भाषा राजस्थानी को प्राप्त स्वाधीनता के सरक्षण एव पोषण के लिये पुन भारतीय भाषा-पीठ पर कम से कम 'राजस्थान-भारती' के रूप में प्रतिष्ठित करें। हमारी परवशता से सतप्त हो कर यह राजस्थानी सरस्वती 'चार आना' रह गई है, इसलिये अब स्वाधीनता के उप काल में इसको प्रफुल्ल करना हमारा प्रथम लक्ष्य होना चाहिये।

(ड) लिपि और सहायक पुस्तको आदि का प्रश्न ?

नागरी लिपि के लिये तीसरे अध्याय मे स्पष्ट किया जा चुका है कि यह लिपि राजस्थानी भाषा की अपनी लिपि है। नागरी लिपि का विकसित मूल रूप राजस्थानी लेखन मे प्रचलित है। मराठी नागरी लिपि मे व्यक्त की जाती है, किन्तु इससे उसके स्वतन्त्र प्रान्तीय अस्तित्व पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा है।

पाठ्य-पुस्तिकाओ, सहायक पुस्तको आदि की राजस्थानी मे कमी है, यह दलील भी कुछ विरोधियो द्वारा दी जाती है। किन्तु इसमे कोई तथ्य नही है, क्योकि ऐसी पुस्तको का निर्माण और प्रकाशन आवश्यकतानुसार ही होता है।

कुछ व्यक्ति राजस्थानी को भाषा ही नही मानते। राजस्थान के अन्न-जल एव अर्थ से पलने वाले एक उत्तरप्रदेशी ने "राजस्थानी भाषा के प्रश्न से अधिक चचल" हो कर एक पुस्तक ही छपवा दी है और उसमे लिखा गया है कि "बोलते पशु भी है, परन्तु वे कहते या भाषते नही है। इसलिये उनकी बोली 'भाषा' नही बनती ···· · · मनुष्य-समाज मे

त यदोन उद्गार प्रकट किये हैं (हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद, हैदराबाद अधिवेशन सभापति भाषण, पृष्ठ ६३–[illegible])

भी बोली और भाषा का यही भेद अनुपात-क्रम से देखने में आता है"[1]। इनके मत से राजस्थानी मानो सभी पशु ही है। हड़प्पा-मोहन जोदड़ो-काल की प्राचीनतम भारतीय संस्कृति से सम्बन्वित गौरवशाली राजस्थानी जनता का इनकी दृष्टि में कोई अस्तित्व ही नहीं है। राजस्थानी भाषा की व्याकरण, साहित्य-सम्पन्नता, अभिव्यंजना-शक्ति आदि के विषय में अन्यत्र यथा स्थान लिख दिया गया है। राजस्थानी भाषा के विरोधियो की सभी दलीलो पर यथातथ्य निरूपण करने के पश्चात् अन्त में इतना ही लिखना पर्याप्त है कि जन-भाषा राजस्थानी का विरोध करना राजस्थानी जनता की उन्नति का विरोध करना है और अब यह सर्वथा असह्य है। भारतीय संविधान में विभिन्न प्रान्तीय भाषाओ के संरक्षण की ही नहीं, विकास की भी व्यवस्था की गई है। ऐसी अवस्था में राजस्थानी भाषा की अवहेलना करना राजस्थानी जनता के विकास को अवरुद्ध कर अखिल भारतीय उत्कर्ष में व्याघात पहुँचाना है। साथ ही घोर अराष्ट्रीयता भी है।

१—आर्य भाषा और संस्कृति, पृष्ठ १५–१६।

छठा अध्याय

राजस्थानी भाषा के लिये हमारा कर्तव्य

समस्त राजस्थानियो एव राजस्थान मालवा, अजमेर, आबू आदि राजस्थानी भाषा-भाषी क्षेत्रो की सर्वतोमुखी शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सास्कृतिक उन्नति का महत्त्वपूर्ण प्रश्न 'राजस्थानी भाषा' के विकास एव मान्यता के साथ जुडा हुआ है। इसलिये अविलम्ब ही इस विषय मे ठोस कार्य करने की आवश्यकता है।

(क) भारतीय संसद

भारतीय ससद का कर्तव्य है कि 'राजस्थानी' को प्रान्तीय एव राज्य-भाषा की भाँति मान्यता प्रदान कर दो करोड भारतीय जनता की सर्वागीण उन्नति का मार्ग प्रशस्त करे। राजस्थानी जनता के साथ इस सम्बन्ध में सर्वथा अन्याय हुआ है और इसके निराकरण के लिये ससद-सदस्यो को अविलम्ब ही कटिबद्ध हो जाना चाहिये।

(ख) केन्द्रीय सरकार

वर्तमान मे राजस्थानी भाषा-भाषी 'ब' और 'स' राज्यो के प्रति केन्द्रीय सरकार का विशेष उत्तरदायित्व है। इसलिये 'राजस्थानी भाषा' को वैधानिक मान्यता दिलवाने और इसकी उन्नति के लिये केन्द्रीय सरकार को विशेष व्यवस्था करनी-करवानी चाहिये। रेडियो और अन्य सार्वजनिक सपर्क के साधनो मे 'राजस्थानी भाषा' के यथोचित प्रयोग की तुरन्त व्यवस्था की जानी चाहिये। साथ ही समस्त राजस्थानी भाषा-भाषी क्षेत्रो को एक प्रान्त के रूप में सगठित करने का कार्य भी शीघ्र ही पूरा किया जाना चाहिये।

(ग) सम्वन्धित राज्य-सरकारें

राजस्थान, अजमेर, मध्यभारत-मालवा और आवू आदि राजस्थानी भापा-भापी क्षेत्रो से सम्वन्धित सरकारो तथा विधान सभाई सदस्यो (एसेम्वली मेम्वरो) को चाहिये कि 'जन भापा राजस्थानी' को प्रान्तीय और राज्य भापा के रूप मे स्वीकार करें। साथ ही शैक्षिक और सार्वजनिक कार्यों में इसका समुचित प्रयोग करें एव इसकी उन्नति की पूरी-पूरी व्यवस्था करें। कोई भी सरकार अपनी जनता की मातृभापा को पूर्ण मान्यता देकर ही जनता का विश्वास और सहयोग प्राप्त कर सकती है, यह सम्वन्धित सरकारो, मन्त्रियो और अधिकारियो को सदैव ध्यान में रखना चाहिये।

(घ) जन-नायक और हितचिन्तक

सम्वन्वित जन-नायको एव हितचिन्तकों का परम कर्तव्य है कि वे अव 'राजस्थानी भापा' की मान्यता और उन्नति के लिये अविलम्व ही क्रियाशील वनें। हमारे कई नेताओ ने 'राजस्थानी भापा' के लिये महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं और आज भी वे जनता में प्रचार-प्रकाशन के लिये 'राजस्थानी भापा' का ही प्रयोग करते हैं। अव उनको 'राजस्थानी भापा' की मान्यता के लिये विशेष प्रयत्नशील होना चाहिये तथा इसकी सहायता से अपने कार्यों को सगठित एव ठोस वनाना चाहिये।

(ङ) हमारे साहित्यकार

राजस्थानी भापा के लिये सम्वन्वित साहित्यकारो का विशेप उत्तर-दायित्व है। अतीत में हमारे साहित्यकारो ने राजस्थानी भापा को अपना कर परम उत्कृष्ट साहित्य का निर्माण किया है और आज भी कई साहित्यकार इसी आदर्श को अपनाते हुए अपनी कृतियो में पूर्ण रूपेण सफल हो रहे हैं। कोई भीसाहित्यकार अपनी जनता का और अपने

युग का हो कर ही जन-जन का और युग-युग का हो सकता है । साहित्यकार जनता का प्रतिनिधि होता है, इसलिये उसे 'जन भाषा' से मुह मोड कर अपने पैरो आप कुल्हाडी नही मारनी चाहिये ।

समस्त राजस्थान, मध्यभारत-मालवा आदि के साहित्यकारो का परम कर्तव्य है कि वे जनभाषा राजस्थानी मे काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबन्ध और समालोचना सम्बन्धी साहित्य की सृष्टि करे । साथ ही राजस्थानी रचनाओ के अनुवाद अन्य प्रमुख भाषाओ मे और अन्य भाषाओ की उत्कृष्ट कृतियो के अनुवाद राजस्थानी में प्रस्तुत करें।

(च) विद्वान् विचारक आदि

विद्वानो का कर्तव्य है कि राजस्थानी भाषा का विविध दृष्टिकोण से पूरा-पूरा अध्ययन करें और राजस्थानी साहित्य की खोज, सग्रह, सम्पादन एव प्रकाशन का कार्य शीघ्र ही पूरा करें । इसी प्रकार हमारे विचारको, वैज्ञानिको और इतिहासकारो को चाहिये कि राजस्थानी जनता के लिये सभी प्रकार की पाठ्य-सामग्री 'राजस्थानी भाषा' में प्रस्तुत करें ।

(छ) पत्रकार

राजस्थानी जनता से सम्बन्धित पत्रकारो ने अब तक 'राजस्थानी भाषा' की उपेक्षा की है और इसका दुष्परिणाम भी पत्रो को उठाना पडा है । जन-भाषा राजस्थानी की अवज्ञा से राजस्थानी जनता तक इन पत्रो की पहुँच नही हो सकती है और ग्राहको के अभाव में इनका अन्त असमय में ही हो जाता है । राजस्थानी जनता से सम्बन्धित पत्रो के अधिकाधिक प्रचार एव स्थायित्व की दृष्टि से राजस्थानी भाषा का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है । प्रारभ मे हमारे पत्र कुछ पृष्ठ ही राजस्थानी भाषा मे प्रकाशित कर इस विषय मे प्रगति कर सकते है । प्रसन्नता है कि हमारे कुछ पत्रकारो ने इस विषय में सराहनीय कार्य किया है ।

(ज) सम्बन्धित संस्थाएँ

राजस्थानी जनता से सम्बन्धित सस्थाओ एव उनके सञ्चालको के लिये उचित है कि अब वे प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपना कर जनभाषा राजस्थानी की सहायता से जनोन्नति का सीधा मार्ग ग्रहण करे। जन-भाषा को अपना कर ही जन-सेवी सस्थाएँ जनता का सहयोग प्राप्त कर सकती हैं।

(झ) राजस्थानी भाषा की उन्नति के लिये प्रमुख कार्य

सक्षेप में 'राजस्थानी' सम्बन्धी प्रमुख कार्यो की रूपरेखा निम्नलिखित हैं–

(१)

भारतीय सविधान के अनुच्छेद ३४४ (१) और ३५१ एव अष्टम अनुसूची में राजस्थानी भाषा को मान्य करना।

(२)

राजस्थान, मध्यभारत-मालवा, अजमेर आदि राजस्थानी भाषा-भाषी क्षेत्रो की सरकारो से 'राजस्थानी' को मान्य करवाना और सार्वजनिक तथा जहाँ तक सभव हो राजकीय कार्यों में 'राजस्थानी' का व्यवहार करवाना।

(३)

मातृभाषा राजस्थानी को समस्त राजस्थानी जनता में प्रारभिक शिक्षण, माध्यमिक शिक्षण, प्रौढ शिक्षण आदि के लिये माध्यम रूप में स्वीकार करना।

(४)

समस्त राजस्थानियो और सम्बन्धित सगठनो द्वारा सार्वजनिक, व्यौपारिक एव आपसी कार्यों के लिये राजस्थानी के व्यवहार को अधिकाधिक बढाना।

४—श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ने इधर कुछ अर्से से राजस्थान की बोलियो को एक प्रान्तीय भाषा का रूप देकर राजस्थान प्रान्त की भाषा के आन्दोलन को उठाया है। राजस्थानी भाषा का सवाल एकदम राजस्थानी जनता का सवाल है।

—जनार्दन राय नागर

५–राजस्थानी हमारी मातृभाषा है और मातृभाषा का स्थान शिक्षण-व्यवस्था में बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। मातृभाषा का महत्त्व शिक्षण की दृष्टि से तो अधिक है ही, किन्तु उसके सांस्कृतिक,सामाजिक तथा राजनैतिक महत्त्व की उपेक्षा भी नही की जा सकती।

—रानी लक्ष्मीकुमारी चण्डावत

६–मेरा बस चले तो मैं किसी भी राजस्थानी को राजस्थान के काम-काज के लिये राजस्थानी के उपरान्त दूसरी बोली मे न बोलने दूं, न लिखने दूं अगर हम राजस्थानी जनता को उठाना चाहते है और एक नया जीवित और तेजस्वी राजस्थान देखना चाहते है तो यह कार्य करना बहुत जरूरी है।

—हरिभाऊ उपाध्याय

७–राजस्थानी भाषा के उत्थान, अभिवृद्धि एवं प्रचार का एकमात्र उद्देश्य यही है कि राजस्थान में इसे उसी पद की प्राप्ति हो जो गुजरात मे गुजराती को और बगाल में बंगला को प्राप्त है।

—रामदेव चोखानी

८–प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा राजस्थानी में नही होने के कारण मानसिक विकास में अभिवृद्धि होने के बजाय, शिक्षण के साथ इतर भाषा का बोझा, मातृभाषा के साथ हमारी गौरवमयी संस्कृति के विनाश की दुर्भावना भी उत्पन्न करता है।

—अगरचन्द नाहटा

९–५० वर्ष पूर्व राजस्थानी का व्याकरण तैयार हो चुका था और इसकी पाठ्य पुस्तके भी पढाई जाती थी। पर खेद है कि आज के विधान-

शील युग में राजस्थानी लोग इस ओर उपेक्षा के साथ सोये पडे है। कोई प्रान्त तभी शीघ्रगामिता के साथ उन्नत और विकसित हो सकता है, जबकि उसका शिक्षण-माध्यम उसकी भाषा हो।

—पं० नरोत्तमदास स्वामी

१०–राजस्थानी को छोडकर हम बढ नहीं सकते, शिक्षित हो नही सकते, जीवित रह नहीं सकते। राजस्थानी की उन्नति का प्रश्न हमारे जीवन-मरण का प्रश्न है।

—डा० रामसिंह

११–अगर हमारी राजस्थानी भाषा राजनैतिक क्षेत्र में मार दी गई तो हम राजस्थानी भी मरे तुल्य हो जावेंगे जब तक हम अपनी मातृभाषा राजस्थानी का मान करना न सीखेंगे तब तक हमारा भी कहीं मान होने वाला नही है।

—कुं० जसवन्त सिंह

१२–हम शक्तिशाली होकर देश सेवा करना चाहते है तो हमें मातृ-भाषा राजस्थानी की शरण लेनी चाहिये। राजस्थान निर्माण के बाद हमारा यह कर्त्तव्य हो गया है कि हम राजस्थानी भाषा की सेवा करें और इसे प्रान्तीय भाषा का रूप दें।

—बलवन्त सिंह मेहता

१३–राजस्थान में राजस्थानी भाषा का मान नही करने वाले अपने घर का रास्ता लेंगे। संविधान की भाषाओं में आज नही तो कल अवश्य ही राजस्थानी का नाम लिखा जावेगा। मुझे उस दिन बडी प्रसन्नता होगी, जब मैं देखूंगा कि हमारे यहाँ राजस्थानी भाषा मे सभी पुस्तकें पढाई जाती है।

—मथुरादास माथुर

१४–राजस्थान की भाषा अभी तक मरी नहीं है। वह जीवित तो है, पर है नींद में। उसको जगाना जरूरी है और यह काम है राजस्थान के सपूतो का।

—घनश्यामदास बिड़ला

१५–सीमावर्ती प्रान्त को लोहे की दीवार बनाना है तो राजस्थानी भाषा और साहित्य की नीव पर ही उसका निर्माण करना होगा।

—सत्यदेव विद्यालकार

१६–राजस्थान के कुछ विशिष्ट साहित्यकार प्रान्त के भाषा विषयक प्रश्न को नई युक्तियो और नये जोश के साथ आगे ला रहे हैं "राजस्थानी" का मौजूदा आन्दोलन कोई असफल राजनैतिक नेता नही चला रहा है।

—अचलेश्वर प्रसाद शर्मा

१७–राजस्थान सरकार ने सब कुछ निश्चितताएँ केन्द्र को दी है, किन्तु जनता की भाषा राजस्थानी के अभाव को राजतत्र का राहु समझ कर उसका विकास उसे सबसे पहले करना चाहिये।

—जगदीश प्रसाद 'दीपक'

१८–हमारी वाणी करोडो की होते हुए भी राज-भाषा नही है, मातृभाषा से दूर रहेगे तो देश, जाति और समाज का पूरा भला नही कर सकेगे तथा सच्चा सुख नही पा सकेंगे। सच्चा सुख पाना है तो अपनी वाणी को राज्यभाषा बनाना पडेगा।

—चौधरी कुंभाराम आर्य

१९–इन तथ्यो से कोई इन्कार नही कर सकता कि मेरठ जिले के लोगो की मातृभाषा तथा भारत की राज्यभाषा हिन्दी राजस्थान के विशाल राज्य के निवासियो की मातृभाषा नही है। राजस्थान मे शिक्षा का प्रतिशत औसत इस समय नगण्य सा है और हमे राजस्थान के प्रत्येक बालक, स्त्री-पुरुष को शिक्षित करना है।

—जवाहरलाल जैन

२०–राजस्थानी को प्रान्तीय भाषा के रूप मे सरकारी मान्यता प्रदान की जावे. यह राज्य-भाषा भी रह चुकी है। राजस्थानी का साहित्य हर तरह से भरपूर है।

—कु० देवीसिंह, मण्डावा

२१–यह अनुभव करते हुए मार्मिक वेदना होती है कि राजस्थान के जन-जीवन की सर्वांगीण उन्नति की मूल आधार और प्रमुख साधन हमारी मातृभाषा राजस्थानी का सर्वत्र वहिष्कार किया गया है । . .राजस्थानी भाषा की मान्यता के साथ भारत की लगभग दो करोड जनता की शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक उन्नति का या कहना चाहिये, जीवन-मरण का प्रश्न जुडा हुआ है ।

—रेंवतदान चारण

२२–दो करोड जनता की भाग्य-विडम्वना से आज राजस्थानी भाषा को अन्ध कूप में धक्के देकर गिराया जा रहा है . .राजस्थान आज भले ही शकर की तरह गरल के इस कडवे घूंट को आंख मीच कर पी ले पर कल जन-जागरण के डिम-डिम नाद पर उसे ताण्डव भी करने को वाध्य होना पडेगा ।

—कन्हैयालाल सेठिया

२३–प्रजातन्त्र के प्रवाह को रोकने में कोई समर्थ नहीं हुआ । भाषा क्षेत्र में भी नई क्रान्ति को रोकना चट्टान से टकरानामात्र सिद्ध होगा राजस्थानी इस प्रान्त की जनभाषा है । इसे विकसित करना राजस्थान के नव निर्माण के लिये अति आवश्यक है ।

—ओंकारलाल बोहरा

२४–राजस्थान के सास्कृतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक एव राजनैतिक सहज ऐक्य की जननी, शृखलावद्ध सागोपाग सुसाहित्य की स्वामिनी, दो करोड मानवो की मातृभाषा इस वीर वाणी के विना हम (शिक्षा) क्षेत्र में, जिसमें कि हमें द्रुतगति से ही नही अपितु छलाग लगाकर अन्य प्रान्तो जितनी प्रगति करनी है, अभीष्ट साफल्य स्वप्न में भी नही मिल सकेगा ।

—दामोदरलाल मूंवडा

२५–राजस्थानी भाषा के लिये आप जो आन्दोलन करेंगे उसमें मेरा सदा सहयोग रहेगा और मै सक्रिय काम भी कर रहा हूं और करूंगा ।

—कुं० चान्दकरण शारदा

२६–जनता जो स्वामी है–टीवो की, पहाड़ो की और खेतो की, उसको अपने साथ लेना है तो राजस्थानी भाषा को ही अपनाना पडेगा। निर्माण की भाषा वह नही जो ५ फी सदी की हो। राजस्थान में सर्वोदय के लिये सबकी भाषा को मान्यता देना होगा।

—मातादीन भगेरिया

२७–मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि राजस्थान मे राजस्थानी भाषा के माध्यम से शिक्षा नही दी जाती।

—गोविन्द मालवीय

२८–राजस्थान के विभिन्न प्रदेशो और दूर-दूर फैले जनपदो मे परस्पर सलाप-साधन उत्पन्न करने के लिये हमें एकीकृत राजस्थानी भाषा की बडी जरूरत है। हमारे मध्य में वह भाषा विद्यमान है, परन्तु आवश्यकता है उसे लोकमानस के अवचेतन से उठाकर जगाने की।

—श्रीनाथ चतुर्वेदी

२९–राजस्थानी भाषा का पर्याप्त अध्ययन राजस्थान के सर्वतोमुखी विकास के लिये पहिली आवश्यकता है राज्य की प्राथमिक पाठशालाओ में चौथी कक्षा तक राजस्थानी में शिक्षा देने में साधारणतया कुछ भी आपत्ति नही होनी चाहिये।

—डा० रघुवीर

३०–भारतीय सविधान और राज्य-कार्यो मे राजस्थानी भाषा की उपेक्षा करना दो करोड राजस्थानियो की उपेक्षा करना है। इनका निराकरण अविलम्ब ही होना चाहिये।

—भगवतीलाल भट्ट

३१–राजस्थानी के प्रति उपेक्षा दिखाई गई है और राजस्थानी को भुलाया गया है, राजस्थान की दो करोड जनता उसे सहन करनेवाली नही है। वह अपनी सस्कृति, सभ्यता और परपरा का इस प्रकार अन्त नही होने देगी।

—प्रवी[illegible]चन्द्र जैन

३२–राजस्थान जैसे महान् प्रान्त की भाषा को मान्यता न देना खलनेवाला विषय है। राजस्थान सरकार और उसकी दो करोड़ जाग्रत जनता के लिये लज्जा का विषय है। सस्ते-महँगे किसी भी मूल्य पर हो राजस्थानी को विधान में और प्रान्त में अपना स्थान ग्रहण करना ही है।

—सौभाग्य सिंह शेखावत

३३–राजस्थानी भाषा का एक व्यापक स्वरूप है। हमें इसके स्वरूप को विकसित करते हुए भाषा को उपयुक्त स्थान प्राप्त कराने के लिये सबल बनाना है।

—मेघराज 'मुकुल'

३४–राजस्थानी रूड़ी रमणा–व्यापक, वरदा वीरत-वयणा, जग गावै गुणगान।

—बद्रीप्रसाद साकरिया

३५—राजस्थानी भाषा म्हारे,
कालजियेरी कोर
जीवसूं वाली आ राणी,
जय धोरारो देसड़ो, र
मां! जय राजस्थानी।

—प्रेमचन्द्र रावल

३६—सगलो जीवण सपतिवासा,
अपणी मातरभाषा आसा।
बेटा-बेटी दो विसवासा,
वीरों टालो देस-विलासा॥
दोय कोड़री मातरभाषा,
करणी सगलो ऊँच प्रकासा।
नाखै नैणो नीर निसासा,
दयो सपूतो आप्र दिलासा!

राजस्थानी पुस्तक माला-कार्यालय,

प्रधान कार्यालय—जयपुर (राजस्थान)

श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया की कुछ अन्य पुस्तकें —

१—राजस्थान की रस-धारा

२—चारण गीत-माला

३—राजस्थानी भील-कहावतां

४—राजस्थानी साहित्य का इतिहास

५—राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति और विकास

६—राजस्थानी लोकगीत

७—हिन्दी साहित्य की रूपरेखा

८—राजस्थानी काव्य-सग्रह

९—मीरांबाई,

१०—राजस्थानी वार्ता-साहित्य